त्याग हो गया फिर छेदोपस्थापनीय चारित्र देने की क्या आवश्यकता है ? उत्तर– प्रथम तीर्थंकर के साधु ऋजु-जड़ (ऊपर से जड़ यानी मन्दबुद्धि होते हैं किन्तु भीतर से उनका हृदय सरल होता है) होते हैं और अन्तिम तीर्थंकर के साधु वक्र-जड़ (ऊपर से जड़ यानी मन्दबुद्धि और भीतर हृदय में छल-कपट वाले) होते हैं । इसलिए प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के साधुओं को समझाने के लिए छेदोपस्थापनीयचारित्र दिया जाता है । बीच के २२ तीर्थंकरों के साधु ऋजु-प्राज्ञ (प्राज्ञ यानी ऊपर से तीक्ष्ण बुद्धि वाले और ऋजु यानी भीतर से सरलहृदय वाले) होते हैं । इसलिए उनके लिए सामायिकचारित्र ही कहा गया है ।

४. लिंगंतरेहिं (लिंगान्तर से) – प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के साधु सिर्फ सफेद वस्त्र रखते हैं और बीच के २२ तीर्थंकरों के साधु पांच ही वर्ण के वस्त्र रखते हैं ? यह भेद क्यों ?

उत्तर– प्रथम तीर्थंकर के साधु ऋजु-जड़ और अन्तिम तीर्थंकर के साधु वक्र-जड़ होते हैं, इसलिए उनके लिए सिर्फ सफेद वस्त्र रखने की ही आज्ञा है । बीच के २२ तीर्थंकरों के साधु ऋजु-प्राज्ञ होते हैं, इसलिए वे पांचों रंग के वस्त्र रख सकते हैं ।

५. पवयणंतरेहिं (प्रवचनान्तर से)– एक तीर्थंकर के प्रवचन से दूसरे तीर्थंकर के प्रवचन में अन्तर पड़ने से शंका उत्पन्न होती है, जैसे– प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के समय में पांच महाव्रत और छठा रात्रिभोजनविरमणव्रत बतलाया गया है और बीच के २२ तीर्थंकरों के समय में चार महाव्रत और पांचवा रात्रिभोजनविरमणव्रत बतलाया गया है, ऐसा क्यों ? ऐसी शंका

उत्पन्न होवे उसका उत्तर– तीसरे प्रश्न के उत्तर के समान है । चौथे महाव्रत का पांचवें महाव्रत में समावेश किया गया है, क्योंकि स्त्री परिग्रह रूप ही है । इस कारण से बीच के २२ तीर्थंकरों के समय चार महाव्रत कहे गये हैं । अलग-अलग विचार करने से पांच महाव्रत हो जाते हैं ।

६. पावयणंतरेहिं (प्रावचनिकान्तर से)– प्रावचनिक अर्थात् बहुश्रुत पुरुष । एक प्रावचनिक इस तरह की प्रवृत्ति करता है और दूसरा प्रावचनिक दूसरी तरह की प्रवृत्ति करता है। इन दोनों में कौन सी ठीक है ? ऐसी शंका उत्पन्न हो, उसका उत्तर यह है कि चारित्रमोहनीय का क्षयोपशम भिन्न-भिन्न होने से तथा उत्सर्ग, अपवाद मार्ग होने से प्रवृत्ति में अन्तर पड़ जाती है किन्तु वही प्रवृत्ति प्रमाण रूप है, जो आगम से अविरुद्ध है।

७. कप्पंतरेहिं (कल्पान्तर से)– एक कल्प से दूसरे कल्प में अन्तर होने से शंका उत्पन्न होवे, जैसे कि जिनकल्पी साधु नग्न रहते हैं और महाकष्टकारी क्रिया करते हैं , स्थविरकल्पी वस्त्र पात्र रखते हैं और अल्प कष्ट वाली क्रिया करते हैं तो यह अल्प कष्टकारी क्रिया कर्मक्षय में कैसे कारण हो सकती है ?

उत्तर– जिनकल्प और स्थविरकल्प दोनों ही भगवान् की आज्ञा में हैं और दोनों कर्मक्षय के कारण हैं ।

८. मग्गंत्तरेहिं (मार्गान्तर से)– कोई आचार्य दो नमोत्थुणं देते हैं और कोई आचार्य तीन नमोत्थुणं देते हैं । कोई आचार्य अधिक कायोत्सर्ग करते हैं और कोई कम करते हैं । इनमें कौनसा मार्ग ठीक है ? ऐसी शंका होवे, उसका उत्तर– गीतार्थ जिस समाचारी में प्रवृत्ति करता है, यदि वह निषिद्ध नहीं है और

जैन स्तोक मंजूषा
(भाग ८)

प्रकाशक
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, बीकानेर (राज.)

* जैन स्तोक मंजूषा
(भाग ८)

* प्रथम संस्करण– दिसम्बर 1996, प्रतियां 2200

* मूल्य – 22 रुपये

* अर्द्ध मूल्य – 11 रुपये

* प्रकाशक–
श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ
समता भवन, बीकानेर– 334005 (राज.)

* लेजर टाईप सेटिंग:
अमित कम्प्यूटर्स एण्ड प्रिन्टर्स
बागड़ी मोहल्ला, बीकानेर (राज.)

* आवरण:
सुधा ग्राफिक्स, बीकानेर

मुद्रक:
सांखला प्रिन्टर्स
चन्दन सागर,
बीकानेर (राज.)

प्रकाशकीय

गणधरों द्वारा ग्रथिंत आगम ग्रन्थों का अध्ययन और अनुशीलन जन सामान्य के लिए दुरुह है। किन्तु कोई भी जिज्ञासु पाठक सूक्ष्मार्थ प्रतिपादक इन विशालकाय ग्रन्थों से सरलता से तत्त्वज्ञान प्राप्त कर सके इसलिए शास्त्रों में आये हुए मूल पाठों के आधार पर 'स्तोकों–थोकड़ों' का संकलन हुआ इनमें विशेष रूप से भगवती सूत्र और प्रज्ञापना सूत्र के स्तोकों का संकलन दृष्टिगत होता है। इन स्तोकों की वाचना, पृच्छना, पारियट्टणा और अनुप्रेक्षा करके अनेक भव्य आत्माओं ने तलस्पर्शी तत्त्वज्ञान रहस्य प्राप्त किया है।

भगवती और प्रज्ञापना सूत्र के थोकड़ों का सर्वप्रथम व्यवस्थित प्रकाशन श्री अगरचन्द भैरूंदान सेठिया जैन पारमार्थिक संस्था द्वारा हुआ। इसमें श्रद्धेय स्व. आचार्य श्री गणेशीलालजी म.सा. के शिष्य शास्त्रमर्मज्ञ पं. रत्न श्री पन्नालालजी म.सा. तथा सुश्रावक श्री हीरालालजी मुकीम को सैकड़ों थोकड़े कंठस्थ थे उनको भी श्री जेठमल जी सेठिया ने लिपिवद्ध करवाया। तत्पश्चात् भगवती सूत्र के थोकड़ों के नौ भागों में तथा प्रज्ञापना सूत्र के थोकड़ों के तीन भागों में विभाजित कर प्रकाशित करवाया। अनेक संत–सती एवं मुमुक्षु भव्य जन इन थोकड़ों से लाभान्वित हुए।

इन थोकड़ों को कंठस्थ करने से तथा चिन्तन, मनन अन्वेषण करने से शास्त्रों के गहन विषयों पर भी सरलता से अधिकार प्राप्त हो जाता है। इस वात का परीक्षण जव परम पूज्य समता विभूति समीक्षण ध्यान योगी आचार्य भगवन श्री नानालालजी म.सा. तथा शास्त्रज्ञ, तरुणतपस्वी अवधूत साधक

श्रद्धेय युवाचार्य श्री रामलाल जी म.सा. ने किया तो एक योजना बनी कि विद्यार्थी जीवन के प्रारम्भ में ही थोकड़े स्मरण करने के संस्कार डालना आवश्यक है। इधर श्री साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड द्वारा भी नवीन पाठ्यक्रम निर्धारण की मांग जब परम श्रद्धेय आचार्य श्री जी म.सा. एवं परम श्रद्धेय युवाचार्य श्री म. सा. के समक्ष रखी गयी तब आचार्य देव ने नवीन पाठ्यक्रम निर्धारण के लिए श्री युवाचार्य प्रवर को संकेत किया। संकेतानुसार श्रद्धेय युवाचार्य प्रवर ने उपस्थित सन्त–सती वर्ग के परामर्श से नवीन पाठ्यक्रम का निर्माण किया और उसमें अपने पूर्व चिन्तन का अनुसरण करते हुए थोकड़ों को भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। अपनी विलक्षण प्रज्ञा से श्रद्धेय युवाचार्य श्री जी म.सा. ने विद्यार्थियों के परीक्षा स्तर को दृष्टि में रखते हुए उनके अनुकूल थोकड़ों की नवीन संयोजना की।

श्रद्धेय युवाचार्य प्रवर की इस संयोजना को विद्यार्थियों की सुविधा के लिए प्रकाशित करवाने का निर्णय श्री अ.भा. साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड ने लिया और वह जैन स्तोक मंजूषा के रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत है।

धनराज बेताला
संयोजक

मिगसर सुदी ११
वि०सं० २०५३
सन् १९९६

श्री साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, बीकानेर

अर्थ सहयोगी

देशनोक निवासी श्री मोतीलालजी दुगड़ आचार्य श्री हुक्मीचन्दजी म.सा. एवं श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ बीकानेर के स्थापना काल से ही एकनिष्ठ सुश्रावक है। श्रीमद् जवाहराचार्य, श्री गणेशाचार्य, श्री नानेशाचार्य एवं युवाचार्य श्री राममुनि के श्रद्धालु भक्तों में श्री दुगड़जी का परिवार अग्रणी है। शासननिष्ठ श्री मोतीलालजी दुगड़ के चार पुत्रों–श्री सुन्दरलालजी दुगड़, श्री सोहनलालजी दुगड़, श्री पूनमचन्द दुगड़ एवं श्री कौशल कुमार दुगड़ में श्री सुन्दरलालजी ज्येष्ठ पुत्र हैं तथा संघ एवं समाज के कर्मठ कार्यकर्त्ताओं में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

श्री सुन्दरलालजी दुगड़ जैन समाज के उन युवा उद्योगपतियों में प्रमुख हैं, जिन्होंने विगत एक दशक में अपने अथक परिश्रम, कौशल, प्रतिभा तथा उदारता से न केवल औद्योगिक जगत में विशिष्ठ स्थान बनाया है अपितु अपनी धर्मनिष्ठा, सदाचारिता एवं दुःखकातरता से शिक्षा और सेवा के क्षेत्र में भी अनुकरणीय आदर्श स्थापित किया है।

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ के पूर्व उपाध्यक्ष श्री सुन्दरलालजी दुगड़ अनेक सामाजिक, शैक्षणिक, धार्मिक तथा सेवा संस्थानों के सम्प्रति ट्रस्टी, अध्यक्ष, मंत्री आदि विभिन्न पदों पर कार्यरत हैं एवं घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध हैं। श्री दुगड़ ने भवन निर्माण का कार्यारम्भ कर व्यवसाय जगत में प्रवेश किया एवं आर.डी. बिल्डर्स की स्थापना की,

किन्तु अपनी दूरदर्शिता कार्यकुशलता त्वरित निर्णय क्षमता तथा प्रतिभा के बल पर आज दैनिक बंगला अखबार सोनार बंगला एवं जूट आदि मिलों का संचालन कर रहे हैं। आर.डी. बिल्डर्स नामक इनकी कम्पनी आर.डी.बी. इण्डस्टीज लि. मे परिवर्तित होकर औद्योगिक जगत में पैर जमाकर इनके गतिशील चुम्बकीय व्यक्तित्व की कहानी कह रही है।

युवा उद्योग रत्न श्री सुन्दरलालजी दुगड़ समय की नब्ज पहचानने वाले प्रगतिशील विचारों के धनी हैं। 'दिया दूर नहीं जात' के पथ का अनुसरण करने वाले श्री दुगड़ ने अपनी जन्मभूमि देशनोक में समता–शिक्षा–सेवा संस्थान की स्थापना में प्रमुख भूमिका का निर्वहन किया है। कपासन (उदयपुर) में आचार्य नानेश रूप रेखा प्राणी रक्षालय की स्थापना भी इनके अनुदान से हुई है।

हंसमुख, मिलनसार, विनम्र श्री दुगड़ का व्यक्तित्व प्रदर्शन, विज्ञापन एवं पाखंड से सर्वथा दूर सरलता सादगी और उदारता से समन्वित कलकत्ता के जैन अजैन समाज में अत्यन्त लोकप्रिय है। अनेक राजनेताओं से घनिष्ठ सम्बन्ध होने पर भी ये एक निरभिमानी निष्काम कर्मठ कार्यकर्त्ता के रूप में जाने पहचाने जाते हैं; धर्म और सेवा का कलकत्ता में ऐसा कोई संस्थान तथा संगठन नहीं है जो इनके उदार सहयोग एवं सक्रिय व्यक्तित्व से लाभान्वित नहीं होता हो।

श्री दुगड़ जी के अर्थ सहयोग से प्रकाशित यह पुस्तक इनकी प्रशस्त एवं प्रगाढ़ धर्म भावना का प्रतीक है। इस सहयोग हेतु हम इनके हृदय से आभारी हैं।

***

अनुक्रमणिका

जैन स्तोक मंजूषा
भाग - ८

१. नरकलोकादि सात द्वार का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक तेरहवां, उद्देशा चौथा)

श्री भगवतीजी सूत्र के १३वें शतक के चौथे उद्देशे में नरकलोक आदि ७ द्वार का थोकड़ा चलता है, सो कहते हैं –

१. नैरयिकद्वार , २ स्पर्शद्वार ,३ प्रणिधिद्वार ,४ निरयान्तद्वार , ५ लोकमध्यद्वार,६ दिशाविदिशाद्वार, ७ अस्तिकायप्रवर्तनद्वार ।

१. नैरयिकद्वार– अहो भगवन् ! नरक कितनी कही गई है ? हे गौतम ! नरक सात कही गई हैं – रत्नप्रभा यावत् तमतमाप्रभा।

तमतमाप्रभा नामक सातवीं नरक में * ५ नरकावास हैं। वे नरकावास छठी नरक के नरकावासों से १ महा लम्बे-चौड़े , २ महा विस्तार वाले, ३ महा अवकाश वाले , ४ महा शून्यस्थान वाले

** इन ५ नरकावासों में से अपइट्ठाण नामक बीच का नरकावास छठी नरक के नरकावासों से छोटा है, लेकिन यहां समुच्चय बोल लिया है, इसलिए अलग नहीं कहा है।*

(जीव थोड़े हैं और स्थान बहुत खाली) हैं। उन नरकावासों मे रहने वाले जीव १ महाकर्म वाले, २ महाक्रिया वाले, ३ महा-आश्रव वाले , ४ महावेदना वाले , ५ अल्पऋद्धि वाले , ६ अल्पद्युति वाले हैं।

छठी नरक में पांच कम एक लाख नरकावास हैं । ये नरकावास सातवीं नरक के नरकावासों से १ अल्प लम्बे-चौड़े ; २ अल्प विस्तार वाले, ३ अल्प अवकाश वाले, ४ अल्प शून्यस्थान वाले (जीव बहुत हैं और खाली स्थान थोड़ा) हैं। इन नरकावासों में रहने वाले जीव सातवीं नरक के नारकी जीवों से १. अल्पकर्म वाले, २. अल्पक्रिया वाले, ३. अल्प-आश्रव वाले, ४. अल्पवेदना वाले, ५. महाऋद्धि वाले, ६. महाद्युति वाले हैं। इसी तरह यावत् पहली नरक तक कह देना चाहिये।

२. स्पर्शद्वार– अहो भगवन् ! नारकी जीव वहां की पृथ्वी का कैसा स्पर्श अनुभव करते हैं ? हे गौतम ! वे नारकी जीव वहां की पृथ्वी का अनिष्ट यावत् अमनोज्ञ स्पर्श अनुभव करते हैं। इसी तरह वे जीव वहां के पानी * यावत् वनस्पतिकाय का भी अनिष्ट यावत् अमनोज्ञ स्पर्श अनुभव करते हैं।

३. प्रणिधिद्वार– अहो भगवन् ! सात नारकों की मोटाई-

** यहां ' यावत्' शब्द से तेजस्काय और वायुकाय का ग्रहण किया गया है । बादर तेजस्काय सिर्फ अढाई द्वीप में ही होती है। इसलिए नरक में बादर तेजस्काय नहीं होती परन्तु वहां पर अग्नि के समान अन्य उष्ण वस्तु होती है। इसलिए नरक के जीव तेजस्काय के स्पर्श का अनुभव करते हैं।*

पोलाई (चौड़ाई) कैसी है ? हे गौतम ! पहली नरक दूसरी नरक की अपेक्षा जाड़ाई में मोटी + है और चारों दिशाओं में लम्बाई-पोलाई में छोटी है। इसी तरह दूसरी नरक तीसरी नरक से जाड़ाई में मोटी है और चार दिशाओं में लम्बाई-पोलाई में छोटी है। इसी तरह सातवीं नरक तक कह देना चाहिये।

४. निरयांतद्वार— अहो भगवन् ! नरकावासों के आसपास जो पृथ्वीकायिक यावत् वनस्पतिकायिक जीव हैं, वे कैसे कर्म वाले यावत् कैसी वेदना वाले हैं ? हे गौतम ! वे जीव महाकर्म , महाक्रिया, महा-आश्रव और महावेदना वाले हैं ।

५. लोकमध्यद्वार— अहो भगवन् ! लोक का मध्यभाग कहां है ? हे गौतम ! समुच्चय लोक का मध्यभाग पहली नरक के नीचे आकाश (आन्तरे) में असंख्यातवें भाग जाने पर है। अधोलोक (नीचालोक) का मध्यभाग चौथी नरक के आकाशखण्ड का कुछ अधिक अर्द्धभाग जाने पर है। ऊर्ध्वलोक (ऊंचा लोक) का मध्यभाग पांचवें देवलोक की तीसरी रिष्ट नामक पड़तल (प्रतर) में

---

* पहली नरक जाड़ाई में एक लाख अस्सी हजार योजन प्रमाण है व दूसरी नरक जाड़ई में एक लाख बत्तीस हजार योजन प्रमाण है । पहली नरक लम्बाई और पोलाई (चौड़ाई) में एक रज्जु (राजु) प्रमाण है इसलिए छोटी है और दूसरी उससे अधिक प्रमाण वाली है (अढ़ाई राजू की लम्बी-चौड़ी है)। तीसरी नरक ४ राजू की लम्बी-चौड़ी है, चौथी नरक ५ राजू की लम्बी-चौड़ी है, पांचवीं नरक ६ राजू की लम्बी-चौड़ी है, सातवीं नरक ७ राजू की लम्बी-चौड़ी है।

है। तिर्यग्लोक (तिर्छालोक) का मध्यभाग मेरुपर्वत के बीचोंबीच (रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर दो क्षुद्र प्रतर ऊपर और नीचे है, उनके बीच में + आठ रुचक) प्रदेश हैं, वहां है।

६. दिशाविदिशाद्वार– मेरु पर्वत के बीचोंबीच आठ रुचक प्रदेशों से दस दिशाएं निकली हैं। दस दिशाओं के नाम इस प्रकार हैं – १ इन्द्रा (पूर्वदिशा) , २ अग्निकोण (पूर्वदक्षिण के बीच) , ३ जम्मा (दक्षिणदिशा), ४ नैऋत्यकोण (दक्षिणपश्चिम के बीच) , ५ वारुणी (पश्चिमदिशा) , ६ वायव्यकोण (पश्चिमउत्तर के बीच) , ७ सोमा (उत्तरदिशा) , ८ ईशानकोण (उत्तरपूर्व के बीच) , ९ विमला (ऊंचीदिशा) , १० तमा (नीचीदिशा) । इन दस दिशाओं के नाम वाले दस देव दिशाओं के मालिक हैं। दस दिशाएं रुचक प्रदेशों से निकली हैं। रुचक प्रदेशों से इनकी आदि (शुरुआत) है। चार दिशाएं आदि (शुरु) में दो प्रदेशी हैं फिर आगे दो दो प्रदेश विस्तार वाली होती गई हैं। लोक आसरी असंख्यात प्रदेशी हैं और आलोक आसरी अनन्त प्रदेशी हैं । लोक आसरी सादि -सान्त (आदि-अन्तसहित) हैं और अलोक आसरी सादि-अनन्त (आदि सहित और अन्त रहित) हैं। लोक आसरी मुरज (मृदंग) के आकार हैं और अलोक आसरी गाड़ी के ऊध (आगे के हिस्से) के आकार हैं।

चार विदिशायें रुचक प्रदेशों से निकली हैं, रुचक प्रदेश से उनकी आदि (शुरुआत) है। वे आदि में एक प्रदेश वाली हैं और

+ रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर ही दोनों क्षुद्र प्रतर हैं। ये प्रतर सबसे छोटे हैं। इनके बीचोंबीच ही आठ रुचक प्रदेश हैं।

फिर आगे उत्तरोत्तर वृद्धि रहित लोक अलोक तक चली गई हैं। लोक आसरी असंख्यात प्रदेशी हैं , सादि-सान्त हैं। अलोक आसरी अनन्त प्रदेशी हैं, सादि-अनन्त हैं। टूटी हुई मुक्तावली (मोती की माला) के आकार हैं।

विमला (ऊंचीदिशा), तमा (नीचीदिशा) रुचक प्रदेशों से निकली हैं। रुचक प्रदेशों से इनकी आदि है। आदि (शुरु) में ये चार प्रदेशी हैं । दो प्रदेश की चौड़ी हैं। उत्तरोत्तर वृद्धि रहित लोक अलोक तक चली गई हैं। लोक आसरी असंख्यात प्रदेशी और सादि-सान्त हैं। अलोक आसरी अनन्त प्रदेशी और सादि-अनन्त हैं। ये रुचक प्रदेशों के आकार वाली हैं।

७. अस्तिकायप्रवर्तनद्वार – अहो भगवन् ! लोक क्या है ? हे गौतम ! लोक पंचास्तिकाय रूप है। धर्मास्तिकाय गतिलक्षण है। जीवों के गमनागमन , भाषा , नेत्र उघाड़ने , मन-वचन-काय योग में सहायक है। इसी प्रकार दूसरे भी जो गमनशील पदार्थ हैं वे सभी धर्मास्तिकाय से प्रवृत्ति करते हैं। अधर्मास्तिकाय स्थितिलक्षण है। जीवों को खड़ा रहने में , बैठने में , सोने में , मन स्थिर करने में सहायक है। इसी प्रकार दूसरे भी जो स्थिर पदार्थ हैं वे सभी अधर्मास्तिकाय से प्रवृत्ति करते हैं। आकाशास्तिकाय अवगाहनालक्षण है। जीवों के लिए और अजीवों के लिए आश्रय रूप है। जीवास्तिकाय उपयोगलक्षण है। ज्ञान और दर्शन उपयोग रूप है। पुद्गलास्तिकाय ग्रहणलक्षण है। इससे जीवों के इन्द्रिय, शरीर आदि बनते हैं।

२. प्रदेशस्पर्शना ओघाया का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक तेरहवां, उद्देशा चौथा)

१. अस्तिकाय प्रदेशस्पर्शनाद्वार– अहो भगवन् ! धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश ने धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों को स्पर्शा है ? हे गौतम ! + जघन्य ३ , उत्कृष्ट ६ , प्रदेशों को स्पर्शा है , धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश ने अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों को

+ यहां जघन्य पद लोकान्त के कोण में होता है। उस भूमि के नजदीक छोटी कोटड़ी के कोण के समान होता है। जैसे कि–
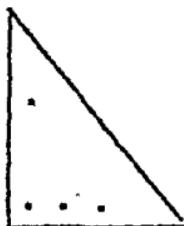
यहां धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश ने धर्मास्तिकाय के ऊपर के एक प्रदेश को और पास के दो प्रदेशों को स्पर्श किया है। इस प्रकार धर्मास्तिकाय के तीन प्रदेशों को स्पर्श किया है ।

उत्कृष्ट पद में चार दिशाओं के चार प्रदेशों को तथा ऊर्ध्वदिशा के एक प्रदेश को और अधोदिशा के एक प्रदेश को, इस प्रकार छह प्रदेशों को स्पर्श किया है। जैसे–
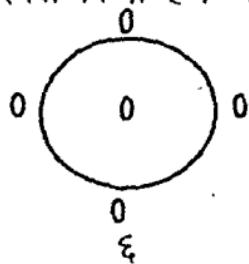
स्पर्शा है ? ÷ जघन्य ४ , उत्कृष्ट ६ प्रदेशों को स्पर्शा है ।
धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश ने आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेशों को स्पर्शा है ? आकाशास्तिकाय के ७ प्रदेशों को स्पर्शा है।
* धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश ने जीवास्तिकाय और पुद्‌गलास्तिकाय के कितने प्रदेशों को स्पर्शा है ? जीवास्तिकाय और पुद्‌गलास्तिकाय के अनन्त प्रदेशों को स्पर्शा है।

÷ जिस प्रकार जघन्य पद में धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश ने धर्मास्तिकाय के तीन प्रदेशों को स्पर्शा है, उसी प्रकार अध र्मास्तिकाय के तीन प्रदेशों को स्पर्शा है और धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश के स्थान में रहे हुए अधर्मास्तिकाय के एक प्रदेश को स्पर्शा है, ये सब मिलाकर चार प्रदेशों को स्पर्शा है।

उत्कृष्ट पद में छह दिशा के छह प्रदेश और अध र्मास्तिकाय के एक प्रदेश के स्थान में रहे हुए धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश, इस प्रकार सात प्रदेशों को स्पर्शा है। लोकान्त में भी अलोकाकाश होने से पूर्वोक्त सात आकाशास्तिकाय के प्रदेशों को स्पर्शा है। सर्व दिशाओं में आकाश होने से आकाशास्तिकाय में जघन्य स्पर्शना नहीं होती है।

** धर्मास्तिकाय का जहां एक प्रदेश है वहां और उसके पास में अनन्त प्रदेश होने से वह जीवों के अनन्त प्रदेशों को स्पर्शता है। इसी प्रकार पुद्‌गलास्तिकाय के अनन्त प्रदेशों को भी स्पर्शता है।*

* धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश ने काल के कितने प्रदेशों को स्पर्शा है ? काल को कदाचित् स्पर्शता है और कदाचित् नहीं स्पर्शता है, यदि स्पर्शता है तो नियमा (अवश्य) अनन्त समयों को स्पर्शता है।

अहो भगवन् ! अधर्मास्तिकाय के एक प्रदेश ने धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों को स्पर्शा है ? हे गौतम ! + जघन्य ४, उत्कृष्ट ७ प्रदेशों को स्पर्शा है। अधर्मास्तिकाय के एक प्रदेश ने अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों को स्पर्शा है ? अधर्मास्तिकाय के एक प्रदेश ने अधर्मास्तिकाय के जघन्य ३, उत्कृष्ट ६ प्रदेशों को स्पर्शा है। आकाशास्तिकाय से लेकर काल तक धर्मास्तिकाय के माफिक कह देना चाहिये।

अहो भगवन् ! आकाशास्तिकाय के एक प्रदेश ने धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों को स्पर्शा है ? हे गौतम ! कदाचित् स्पर्शता है (लोक आसरी)। कदाचित् नहीं स्पर्शता है (अलोक आसरी),

---

** अद्धासमय सिर्फ समयक्षेत्र (अढ़ाई द्वीप) में ही होता है । क्योंकि जहां सूर्य की गति है (सूर्य चलता है) वहीं पर समय आदि काल होता है। इसलिए अद्धासमय को धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश कदाचित् स्पर्शता है और कदाचित् नहीं स्पर्शता है। यदि स्पर्शता है तो अनन्त अद्धासमयों को स्पर्शता है। क्योंकि वह अनादि होने से अनन्त समयों को स्पर्शता है।*

+ जिस प्रकार धर्मास्तिकाय के प्रदेश की स्पर्शना का कथन किया गया है, उसी प्रकार अधर्मास्तिकाय के प्रदेश की स्पर्शना का भी कथन कर देना चाहिए ।

यदि स्पर्शता है तो * जघन्य एक दो तीन चार और उत्कृष्ट सात प्रदेशों को स्पर्शता है। इसी तरह अधर्मास्तिकाय का भी कह देना चाहिये। अहो भगवन् ! आकाशास्तिकाय के एक प्रदेश ने आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेशों को स्पर्शा है ? हे गौतम ! छह प्रदेशों को स्पर्शा है। अहो भगवन् ! आकाशास्तिकाय के एक

** आकाशास्तिकाय का एक प्रदेश लोक में रहे हुए धर्मास्तिकाय के प्रदेशों को स्पर्शता है और अलोक में धर्मास्तिकाय नहीं होने से नहीं स्पर्शता । यदि स्पर्शता है तो जघन्य पद में (१) लोकान्त में रहे हुए धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश को स्पर्शता है। (२) वक्रगत (टेढ़ा रहा हुआ) आकाशप्रदेश धर्मास्तिकाय के दो प्रदेशों को स्पर्शता है। (३) आकाशास्तिकाय के प्रदेश के साथ रहा हुआ प्रदेश और एक पास का प्रदेश और एक ऊपर का या नीचे का प्रदेश, इस तरह धर्मास्तिकाय के तीन प्रदेशों को स्पर्शता है। (४) लोकान्त के कोण में रहा हुआ आकाशप्रदेश वह तदाश्रित प्रदेश, ऊपर का प्रदेश या नीचे का प्रदेश और दो दिशाओं में रहे हुए दो प्रदेश, इस प्रकार धर्मास्तिकाय के चारों प्रदेशों को स्पर्शता है। (५) जो आकाशप्रदेश ऊपर के , नीचे के और दो दिशाओं में रहे हुए दो प्रदेशों को तथा वहीं पर रहे हुए धर्मास्तिकाय के प्रदेश को स्पर्शा है, वह पांच प्रदेशों को स्पर्शता है। (६) जो आकाशप्रदेश ऊपर के, नीचे के तथा तीन दिशाओं के और वहीं पर रहे हुए धर्मास्तिकाय के प्रदेश को स्पर्शता है वह छह प्रदेशों को तथा (७) जो आकाशप्रदेश ऊपर के, नीचे के, चार दिशाओं के तथा वहीं पर रहे हुए धर्मास्तिकाय के प्रदेश को स्पर्शता है, वह सात प्रदेशों को स्पर्शता है। जिस प्रकार धर्मास्तिकाय का कहा, उसी प्रकार अधर्मास्तिकाय का कह देना चाहिए।*

प्रदेश ने जीवास्तिकाय के कितने प्रदेशों को स्पर्शा है ? हे गौतम ! जीवास्तिकाय के प्रदेशों को कदाचित् स्पर्शता है, कदाचित् नहीं स्पर्शता है, यदि स्पर्शता है तो नियमा अनन्त प्रदेशों को स्पर्शता है। इसी तरह पुद्गलास्तिकाय के प्रदेशों की और अद्धाकाल के समयों की स्पर्शना कह देनी चाहिए ।

अहो भगवन् ! जीवास्तिकाय के एक प्रदेश ने धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों को स्पर्शा है ? हे गौतम ! जघन्य ४ उत्कृष्ट सात प्रदेशों को स्पर्शा है। इसी तरह अधर्मास्तिकाय कह देना चाहिये। अहो भगवन् ! जीवास्तिकाय के एक प्रदेश ने आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेशों को स्पर्शा है ? हे गौतम ! आकाशास्तिकाय के सात प्रदेशों को स्पर्शा है। जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और काल धर्मास्तिकाय की तरह कह देना चाहिये। (जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय के अनन्त प्रदेशों को स्पर्शा है। काल को कदाचित् स्पर्शता है, कदाचित् नहीं स्पर्शता, यदि स्पर्शता है तो नियमा अनन्त समयों को स्पर्शता है)।

अहो भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय के एक प्रदेश ने धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों को स्पर्शा है ? हे गौतम ! धर्मास्तिकाय से लेकर काल तक सब अधिकार जीवास्तिकाय की तरह कह देना चाहिये ।

अहो भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय के दो प्रदेशों ने धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों को स्पर्शा है ? हे गौतम ! पुद्गलास्तिकाय के दो प्रदेशों ने धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय

के * जघन्य ६-६ प्रदेशों को , उत्कृष्ट १२-१२ प्रदेशों को स्पर्शा है। पुद्गलास्तिकाय के दो प्रदेशों ने आकाशास्तिकाय के

** यहां चूर्णिकार का मत इस प्रकार है—लोकान्त में द्विप्रदेशी स्कन्ध एक प्रदेश को अवगाहन करके रहा हुआ है, तो भी उस प्रदेश को प्रति द्रव्य की अवगाहना होती है । इस नयमत की विवक्षा से अवगाह प्रदेश एक होते हुए भी भिन्न मानने से उसने दो प्रदेशों को स्पर्शा है तथा उसके ऊपर का अथवा नीचे का जो प्रदेश है वह भी नय के मत से दो प्रदेशों का स्पर्शता है और पास के दो परमाणु एक एक प्रदेश को स्पर्शते हैं, इस प्रकार धर्मास्तिकाय के छह प्रदेशों को द्विप्रदेशी स्कन्ध स्पर्शता है । यदि नय के मत का आश्रय न लिया जाय तो द्विप्रदेशी स्कन्ध चार प्रदेशों को स्पर्शता है।*

इस विषय में वृत्तिकार का मत इस प्रकार है—
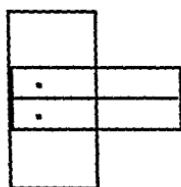
यहां पर जो दो बिंदिया लगी हुई हैं, उन्हें दो परमाणु (द्विप्रदेशी) समझना चाहिए, उसमें से इस तरफ का परमाणु इस तरफ के धर्मास्तिकाय के प्रदेशों को स्पर्शता है और दूसरी तरफ का परमाणु दूसरी तरफ के धर्मास्तिकाय के प्रदेशों को स्पर्शता है, ये दो प्रदेश हुए। जिन दो प्रदेशों में दो परमाणु स्थापित किये हुए हैं, उनके आगे के दो प्रदेशों को स्पर्शता है। ये चार प्रदेश हुए। दो अवगाहे हुए

१२ प्रदेशों को स्पर्शा है । पुद्गलास्तिकाय के दो प्रदेशों ने जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय के अनन्त प्रदेशों को स्पर्शा है। पुद्गलास्तिकाय के दो प्रदेशों ने काल को कदाचित् स्पर्शा है और कदाचित् नहीं स्पर्शा है। यदि स्पर्शा है तो नियमा अनन्त समयों को स्पर्शा है।

प्रदेशों को स्पर्शता है । इस प्रकार छह प्रदेशों को स्पर्शता है।

उत्कृष्ट १२ प्रदेशों को स्पर्शता है, वह इस प्रकार है–
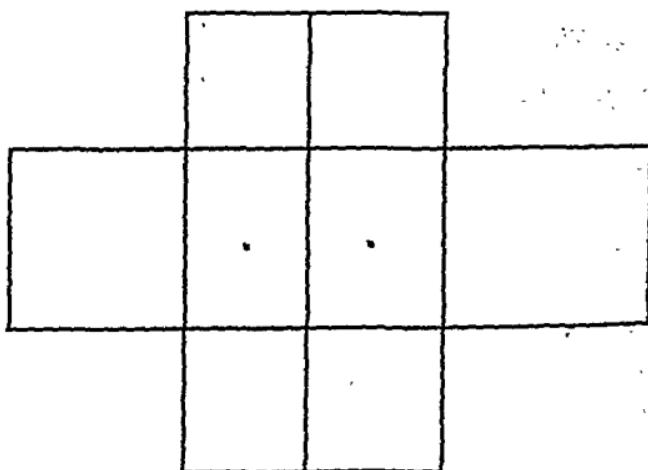
द्विप्रदेशावगाढ़ होने से अवगाहना के दो प्रदेश, दो प्रदेश ऊपर के और दो प्रदेश नीचे के, पास के दो-दो प्रदेश तथा उत्तर और दक्षिण का एक एक प्रदेश, ये सब मिलाकर १२ प्रदेश हुए। यह उत्कृष्ट १२ प्रदेशों को स्पर्शता है ।

पुद्गलास्तिकाय के तीन प्रदेशों ने धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय के * जघन्य ८-८ प्रदेशों को, उत्कृष्ट १७ - १७ प्रदेशों को स्पर्शा है। आकाशास्तिकाय के १७ प्रदेशों को स्पर्शा है, शेष जीवास्तिकाय , पुद्गलास्तिकाय और काल का कथन पुद्गलास्तिकाय के दो प्रदेशी माफिक कह देना चाहिए।

पुद्गलास्तिकाय के चार प्रदेशों ने धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय के जघन्य १० - १० प्रदेशों को, उत्कृष्ट २२ - २२ प्रदेशों को स्पर्शा है । आकाशास्तिकाय के २२ प्रदेशों को स्पर्शा है। शेष जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और काल का कथन पुद्गलास्तिकाय के दो प्रदेशी माफिक कह देना चाहिए।

** पुद्गलास्तिकाय के तीन प्रदेश एक प्रदेशावगाढ़ होते हुए भी पूर्वोक्त नय के मत से अवगाहे हुए तीन प्रदेश, ऊपर के या नीचे के तीन प्रदेश और पास के दो प्रदेश, इस प्रकार धर्मास्तिकाय के आठ प्रदेशों को स्पर्शता है। यहां जघन्य पद में विवक्षित परमाणु को दुगुणे करके उनमें दो और मिला देने चाहिए, उतने प्रदेशों को स्पर्शता है। उत्कृष्ट पद में विवक्षित परमाणु से पांच गुणा करके उनमें दो और मिला देना चाहिए। उतने प्रदेशों को स्पर्शता है। जैसे– एक प्रदेश की स्पर्शना निकालनी हो तो एक को दुगुणा करने से दो हुए। उनमें दो और मिला देने से चार हुए। इस प्रकार एक परमाणु जघन्य चार प्रदेशों को स्पर्शता है। उत्कृष्ट पद में एक परमाणु को पांच गुणा करने से पांच हुए। उनमें दो और मिला देने से सात हुए। इस प्रकार एक परमाणु उत्कृष्ट सात प्रदेशों को स्पर्शता है। इसी प्रकार द्विप्रदेशी, तीनप्रदेशी आदि के विषय में जान लेना चाहिए।*

पुद्गलास्तिकाय के पांच प्रदेशों ने धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय के जघन्य १२ - १२ प्रदेशों को स्पर्शा है, उत्कृष्ट २७ - २७ प्रदेशों को स्पर्शा है। आकाशास्तिकाय के २७ प्रदेशों को स्पर्शा है। बाकी जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और काल का कथन पुद्गलास्तिकाय के दो प्रदेशी की तरह कह देना चाहिए।

पुद्गलास्तिकाय के छह प्रदेशों ने धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय के जघन्य १४ - १४ प्रदेशों को स्पर्शा है और उत्कृष्ट ३२ - ३२ प्रदेशों को स्पर्शा है। आकाशास्तिकाय के ३२ प्रदेशों को स्पर्शा है। शेष जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और काल का कथन पुद्गलास्तिकाय के दो प्रदेशी की तरह कह देना चाहिए।

पुद्गलास्तिकाय के सात प्रदेशों ने धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय के जघन्य १६ - १६ प्रदेशों को स्पर्शा है, उत्कृष्ट ३७ - ३७ प्रदेशों को स्पर्शा है। आकाशास्तिकाय के ३७ प्रदेशों को स्पर्शा है । शेष जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और काल का कथन पुद्गलास्तिकाय के दो प्रदेशी की तरह कह देना चाहिए।

पुद्गलास्तिकाय के आठ प्रदेशों ने धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय के जघन्य १८ - १८ प्रदेशों को स्पर्शा है। उत्कृष्ट ४२ - ४२ प्रदेशों को स्पर्शा है। आकाशास्तिकाय के ४२ प्रदेशों को स्पर्शा है। शेष जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और काल का कथन पुद्गलास्तिकाय के दो प्रदेशी की तरह कह देना चाहिए।

पुद्गलास्तिकाय के ९ प्रदेशों ने धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय के जघन्य २० - २० प्रदेशों को स्पर्शा है, उत्कृष्ट

४७ - ४७ प्रदेशों को स्पर्शा है। आकाशास्तिकाय के ४७ प्रदेशों को स्पर्शा है। शेष जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय व काल का कथन पुद्गलास्तिकाय के दो प्रदेशी की तरह कह देना चाहिए।

पुद्गलास्तिकाय के दस प्रदेशों ने धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय के जघन्य २२ - २२ प्रदेशों को स्पर्शा है, उत्कृष्ट ५२ - ५२ प्रदेशों को स्पर्शा है । आकाशास्तिकाय के ५२ प्रदेशों को स्पर्शा है। शेष जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और काल का कथन पुद्गलास्तिकाय के दो प्रदेशी की तरह कह देना चाहिए।

अहो भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय के * संख्यात प्रदेशों ने धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों को स्पर्शा है ? हे गौतम ! जघन्य पद में उन्हीं संख्यात प्रदेशों को दुगुना करके दो और जोड़ देना और उत्कृष्ट पद में उन्हीं संख्यात प्रदेशों को पांच गुणा करके दो और जोड़ देना । इतने प्रदेशों को स्पर्शा है। जिस प्रकार धर्मास्तिकाय का कहा है उसी तरह अधर्मास्तिकाय का भी कह देना

** दस से ऊपर की संख्या संख्यात में गिनी जाती है। जैसे कि बीस प्रदेशों का एक स्कन्ध लोकान्त के एक प्रदेश में रहा हुआ है। वह किसी एक नय की अपेक्षा से जघन्य पद में ४२ प्रदेशों को (बीस अवगाहे हुए प्रदेशों को और ऊपर या नीचे के बीस प्रदेशों को तथा पास के दो प्रदेशों को = ४२) स्पर्शता है और उत्कृष्ट पद में १०२ प्रदेशों को (२० अवगाहे हुए प्रदेश, २० नीचे के, २० ऊपर के , २० पूर्व के , २० पश्चिम के, १ दक्षिण का, १ उत्तर का, ये सब मिलकर १०२ हुए।) स्पर्शता है। (टीका)*

चाहिए। पुद्गलास्तिकाय के संख्यात प्रदेशों ने आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेशों को स्पर्शा है ? उन्हीं संख्यात को पांच गुणा करके दो और जोड़ देना चाहिए, उतने प्रदेशों को स्पर्शा है । पुद्गलास्तिकाय के संख्यात प्रदेशों ने जीवास्तिकाय के कितने प्रदेशों को स्पर्शा है ? अनन्त प्रदेशों को स्पर्शा है। इसी तरह पुद्गलास्तिकाय के अनन्त प्रदेशों को स्पर्शा है। पुद्गलास्तिकाय के संख्यात प्रदेशों ने कितने अद्धासमयों को स्पर्शा है ? कदाचित् स्पर्शा है और कदाचित् नहीं स्पर्शा है । यदि स्पर्शा है तो नियमा अनन्त अद्धासमयों को स्पर्शा है।

अहो भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय के असंख्यात प्रदेशों ने धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों को स्पर्शा है ? हे गौतम ! जघन्य पद में उन्हीं असंख्यात को दुगुना करके उसमें दो और जोड़ देना, उतने प्रदेशों को स्पर्शा है। उत्कृष्ट पद में उन्हीं असंख्यात को पांच गुणा करके दो और जोड़ देना, उतने प्रदेशों को स्पर्शा है। बाकी सारा कथन संख्यात की तरह कह देना चाहिए।

अहो भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय के अनन्त प्रदेशों ने धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों को स्पर्शा है ? हे गौतम ! जैसे असंख्यात का कहा है, वैसे ही अनन्त का भी कह देना चाहिए * ।

** यहां पर इतनी विशेषता है कि जैसे जघन्य पद में ऊपर और नीचे के अवगाढ प्रदेश औपचारिक (कल्पित) हैं, वैसे ही उत्कृष्ट पद में जानना चाहिए। क्योंकि अवगाह से निरुपचरित (वास्तविक) लोक में अनन्त आकाशप्रदेश नहीं होते हैं, किन्तु असंख्यात ही होते हैं। (टीका)*

+ आकाशास्तिकाय में जघन्य नहीं कहना किन्तु सब जगह उत्कृष्ट ही कहना चाहिए।

पुद्‌गलास्तिकाय ÷ के दो प्रदेशों से लेकर अनन्त प्रदेश तक जघन्य में दुगुने से दो प्रदेश अधिक को स्पर्शा है और उत्कृष्ट में पांच गुणा से दो प्रदेश अधिक को स्पर्शा है। जैसे दो प्रदेशी ने जघन्य ६ को स्पर्शा है (२ X २ = ४ + २ = ६)। उत्कृष्ट १२ को स्पर्शा है (२ X ५ = १० + २ = १२)

पुद्‌गलास्तिकाय के प्रदेश	धर्मास्तिकाय के प्रदेश		अधर्मास्तिकाय के प्रदेश		आकाशास्तिकाय के प्रदेश	
	जघन्य	उत्कृष्ट	जघन्य	उत्कृष्ट	जघन्य	उत्कृष्ट
१	४	७	४	७		७
२	६	१२	६	१२		१२
३	८	१७	८	१७		१७
४	१०	२२	१०	२२		२२
५	१२	२७	१२	२७		२७
६	१४	३२	१४	३२		३२
७	१६	३७	१६	३७		३७
८	१८	४२	१८	४२		४२
९	२०	४७	२०	४७		४७
१०	२२	५२	२२	५२		५२

+ आकाशास्तिकाय का जघन्य पद नहीं होता, उत्कृष्ट पद ही होता है, क्योंकि आकाशास्तिकाय सब जगह विद्यमान है।

÷ पुद्‌गलास्तिकाय का संख्यात प्रदेशी असंख्यात प्रदेशी या अनन्त प्रदेशी जो धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय आकाशास्तिकाय के प्रदेश अवगाहने में दुगने से दो अधिक कहे हैं, वह अलग-अलग आकाशप्रदेश अवगाहने की अपेक्षा से कहा गया है। लेकिन इस तरह से तो आकाशप्रदेश के ऊपर भी असंख्यात, अनन्त प्रदेश तक बैठ सकते हैं। पास में अलोक आ जाने से जघन्य कहा गया है।

प्रदेश	धर्मास्तिकाय		अधर्मास्तिकाय	
	जघन्य	उत्कृष्ट	जघन्य	उत्कृष्ट
धर्मास्तिकाय का १ प्रदेश	३	६	४	७
अधर्मास्तिकाय का १ प्रदेश	४	७	३	६
आकाशास्तिकाय का १ प्रदेश	१-२-३-४ भजना	७	१-२-३-४ भजना	७
जीवास्तिकाय का १ प्रदेश	४	७	४	७
पुद्गलास्तिकाय का १ प्रदेश	४	७	४	७
काल का समय	७		७	

लोकान्त में धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आदि द्रव्यों के तीन दिशा में अलोक आ जाता है। इनमें जघन्य स्पर्शना का वर्णन इसी अपेक्षा से जानना चाहिए।

आकाशास्तिकाय जघन्य उत्कृष्ट	जीवास्तिकाय जघन्य उत्कृष्ट	पुद्गलास्तिकाय जघन्य उत्कृष्ट	काल ज. उत्कृष्ट
७	अनन्त	अनन्त	सिय स्पर्शे सिय नहीं स्पर्शे, यदि स्पर्शे तो अनन्त
७	अनन्त	अनन्त	,, ,,
६	अनन्त (भजना)	अनन्त (भजना)	,, ,,
७	अनन्त	अनन्त	,, ,,
७	अनन्त	अनन्त	,, ,,
७	अनन्त	अनन्त	,, ,,

अहो भगवन् ! काल के एक समय ने धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों को स्पर्शा है ? हे गौतम ! * सात प्रदेशों को स्पर्शा है। इसी तरह अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय का कह देना चाहिए। जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय के अनन्त प्रदेशों को स्पर्शा है। काल के + अनन्तानन्त समयों को स्पर्शा है।

** यहां वर्तमान समय विशिष्ट समयक्षेत्र (मनुष्यलोक) में रहे हुए परमाणु को 'अद्धासमय' समझना चाहिए। यदि ऐसा न समझा जाय तो धर्मास्तिकाय के सात प्रदेशों को 'अद्धासमय' नहीं स्पर्शता है।*

यहां जघन्य पद नहीं होता है। क्योंकि 'अद्धासमय' मनुष्यक्षेत्र के मध्यवर्ती है। जघन्य पद तो लोकान्त के विषय में संभव है किन्तु लोकान्त के विषय में काल नहीं होता है। अद्धासमय विशिष्ट परमाणु द्रव्य एक धर्मास्तिकाय के प्रदेश को अवगाहे हुए है और बाकी धर्मास्तिकाय के छह प्रदेश उसकी छह दिशाओं में रहे हुए हैं।

+ अद्धासमय विशिष्ट परमाणुद्रव्य को अद्धासमय कहते हैं। वह एक अद्धासमय पुद्गलास्तिकाय के अनन्त प्रदेशों को और अनन्त अद्धासमयों को (अद्धासमय विशिष्ट अनन्त परमाणुओं को) स्पर्शता है।

२. अहो भगवन् ! धर्मास्तिकाय धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों को स्पर्शता है ? हे गौतम ! एक भी प्रदेश नहीं स्पर्शता *। अहो भगवन् ! धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों को स्पर्शता है ? हे गौतम ! असंख्याता प्रदेशों को स्पर्शता है। इसी तरह आकाशास्तिकाय का कह देना चाहिए। अहो भगवन् ! धर्मास्तिकाय जीवास्तिकाय के कितने प्रदेशों को स्पर्शता है ? हे गौतम ! अनन्त प्रदेशों को स्पर्शता है। इसी तरह पुद्गलास्तिकाय का कह देना चाहिए। अहो भगवन् ! धर्मास्तिकाय काल के कितने समयों को स्पर्शता है ? हे गौतम ! कदाचित् स्पर्शता है और कदाचित् नहीं स्पर्शता । यदि स्पर्शता है तो नियमा (अवश्य) अनन्त समयों को स्पर्शता है।

जिस तरह धर्मास्तिकाय का कहा, उसी तरह अधर्मास्तिकाय का भी कह देना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि धर्मास्तिकाय के असंख्यात प्रदेशों को स्पर्शता है, अधर्मास्तिकाय के प्रदेशों को नहीं स्पर्शता है।

अहो भगवन् ! आकाशास्तिकाय धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों को स्पर्शता है ? हे गौतम ! धर्मास्तिकाय के असंख्यात प्रदेशों को स्पर्शता है। इसी तरह अधर्मास्तिकाय का कह देना चाहिए। अहो भगवन् ! आकाशास्तिकाय आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेशों को स्पर्शता है ? हे गौतम ! आकाशास्तिकाय के प्रदेश को नहीं स्पर्शता है। अहो भगवन् ! आकाशास्तिकाय

** सम्पूर्ण धर्मास्तिकाय धर्मास्तिकाय के प्रदेशों को नहीं स्पर्शता, क्योंकि दूसरी धर्मास्तिकाय नहीं है।*

जीवास्तिकाय के कितने प्रदेशों को स्पर्शता है ? हे गौतम ! जीवास्तिकाय के अनन्त प्रदेशों को स्पर्शता है। इसी तरह पुद्गलास्तिकाय का कह देना चाहिए। अहो भगवन् ! आकाशास्तिकाय काल के कितने समयों को स्पर्शता है ? हे गौतम ! कदाचित् स्पर्शता है और कदाचित् नहीं स्पर्शता है । यदि स्पर्शता है तो नियमा अनन्त समयों को स्पर्शता है।

अहो भगवन् ! जीवास्तिकाय धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों को स्पर्शता है ? हे गौतम ! असंख्यात प्रदेशों को स्पर्शता है। इसी तरह अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय का कह देना चाहिए। अहो भगवन् ! जीवास्तिकाय जीवास्तिकाय के कितने प्रदेशों को स्पर्शता है ? हे गौतम ! जीवास्तिकाय के एक भी प्रदेश को नहीं स्पर्शता है। अहो भगवन् ! जीवास्तिकाय पुद्गलास्तिकाय के कितने प्रदेशों को स्पर्शता है ? हे गौतम ! अनन्त प्रदेशों को स्पर्शता है। अहो भगवन् ! जीवास्तिकाय काल के कितने समयों को स्पर्शता है ? हे गौतम ! कदाचित् स्पर्शता है और कदाचित् नही स्पर्शता है। यदि स्पर्शता है तो नियमा अनन्त समयों को स्पर्शता है।

अहो भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों को स्पर्शता है ? हे गौतम ! असंख्यात प्रदेशों को स्पर्शता है। इसी तरह अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय का भी कह देना चाहिए। अहो भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय जीवास्तिकाय के कितने प्रदेशों को स्पर्शता है ? हे गौतम ! अनन्त प्रदेशों को स्पर्शता है । अहो भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय पुद्गलास्तिकाय के

कितने प्रदेशों को स्पर्शता है ? हे गौतम ! एक भी प्रदेश को नहीं स्पर्शता है। अहो भगवन् ! पुद्‌गलास्तिकाय काल के कितने समयों को स्पर्शता है ? हे गौतम ! कदाचित् स्पर्शता है और कदाचित् नहीं स्पर्शता है। यदि स्पर्शता है तो नियमा अनन्त समयों को स्पर्शता है।

अहो भगवन् ! काल धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों को स्पर्शता है ? हे गौतम ! धर्मास्तिकाय के असंख्यात प्रदेशों को स्पर्शता है । इसी तरह अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय का भी कह देना चाहिए। अहो भगवन् ! काल जीवास्तिकाय के कितने प्रदेशों को स्पर्शता है ? हे गौतम ! अनन्त प्रदेशों को स्पर्शता है। इसी तरह पुद्‌गलास्तिकाय का भी कह देना चाहिए। अहो भगवन् ! काल काल के कितने समयों को स्पर्शता है ? हे गौतम ! एक भी समय को नहीं स्पर्शता है। *

३ - अवगाहनाद्वार - अहो भगवन् ! धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों को अवगाहे है ? हे गौतम ! एक भी नहीं अवगाहा है। अहो भगवन् ! धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों को अवगाहे है ? हे गौतम ! एक प्रदेश को अवगाहे है। इसी तरह आकाशास्तिकाय का कह देना चाहिए। अहो भगवन् ! धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश

** नोट- धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय इन तीन में असंख्यात कहना और जीवास्तिकाय पुद्‌गलास्तिकाय और काल में अनन्त कहना। नवरं काल में सिय (कदाचित्) शब्द लगाना और स्वठिकाने कोई भी नहीं स्पर्शता है।*

जीवास्तिकाय के कितने प्रदेशों को अवगाहे है ? हे गौतम ! अनन्त प्रदेशों को अवगाहे है। इसी तरह पुद्गलास्तिकाय का भी कह देना चाहिए। अहो भगवन् ! धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश काल के कितने समयों को अवगाहे है? हे गौतम ! कदाचित् अवगाहे है और कदाचित् नहीं अवगाहे है । यदि अवगाहे है तो अनन्त समयों की अवगाहे है।

अहो भगवन् ! अधर्मास्तिकाय का एक प्रदेश धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों को अवगाहे है ? हे गौतम ! एक प्रदेश को अवगाह्या है। अहो भगवन् ! अधर्मास्तिकाय का एक प्रदेश अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों को अवगाहे है ? हे गौतम ! एक भी नहीं अवगाहे है। अहो भगवन् ! अधर्मास्तिकाय का एक प्रदेश आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेशों को अवगाहे है ? हे गौतम ! एक प्रदेश को अवगाह्या है । अहो भगवन् ! अधर्मास्तिकाय का एक प्रदेश जीवास्तिकाय के कितने प्रदेशों को अवगाहे है ? हे गौतम ! अनन्त प्रदेशों को अवगाहे है । इसी तरह पुद्गलास्तिकाय का भी कह देना चाहिए। अहो भगवन् ! अधर्मास्तिकाय का एक प्रदेश काल के कितने समयों को अवगाहे है ? हे गौतम ! कदाचित् अवगाहे है और कदाचित् नहीं अवगाहे है। यदि अवगाहे है तो अनन्त समयों को अवगाहे है ।

अहो भगवन् ! आकाशास्तिकाय का एक प्रदेश धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों को अवगाहे है ? हे गौतम ! कदाचित् अवगाह्या है, कदाचित् नहीं अवगाह्या है, अगर अवगाह्या है तो एक प्रदेश को अवगाह्या है । इसी तरह अधर्मास्तिकाय का

भी कह देना चाहिए। अहो भगवन् ! आकाशास्तिकाय का एक प्रदेश आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेशों को अवगाहे है ? हे गौतम ! एक भी नहीं अवगाहे है । अहो भगवन्! आकाशास्तिकाय का एक प्रदेश जीवास्तिकाय के कितने प्रदेशों को अवगाहे है ? हे गौतम ! कदाचित् अवगाहे है, कदाचित् नहीं अवगाहे है, अगर अवगाहे है तो अनन्त प्रदेशों को अवगाहे है। इसी तरह पुद्‌गलास्तिकाय का भी कह देना चाहिए। अहो भगवन् ! आकाशास्तिकाय का एक प्रदेश काल के कितने समयों को अवगाहे है ? हे गौतम ! कदाचित् अवगाहे है, कदाचित् नहीं अवगाहे है, यदि अवगाहे है तो अनन्त समयों को अवगाहे है।

अहो भगवन् ! जीवास्तिकाय का एक प्रदेश धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों को अवगाहे है ? हे गौतम ! एक प्रदेश अवगाह्या है। इसी तरह अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय का कह देना चाहिए। अहो भगवन् ! जीवास्तिकाय का एक प्रदेश जीवास्तिकाय के कितने प्रदेशों को अवगाहे है ? हे गौतम ! अनन्त प्रदेशों को अवगाहे है । अहो भगवन् ! जीवास्तिकाय का एक प्रदेश पुद्‌गलास्तिकाय के कितने प्रदेशों को अवगाहे है ? हे गौतम ! अनन्त प्रदेशों को अवगाहे है । अहो भगवन् ! जीवास्तिकाय का एक प्रदेश काल के कितने समयों को अवगाहे है ? हे गौतम ! कदाचित् अवगाहे है और कदाचित् नहीं अवगाहे है। यदि अवगाहे है तो अनन्त समयों को अवगाहे है ।

अहो भगवन् ! पुद्‌गलास्तिकाय का एक प्रदेश धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों को अवगाहे है ? हे गौतम ! एक प्रदेश को

अवगाह्या है। इसी तरह अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय का भी कह देना चाहिये। अहो भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय का एक प्रदेश जीवास्तिकाय के कितने प्रदेशों को अवगाहे है ? हे गौतम ! अनन्त प्रदेशों को अवगाहे है। अहो भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय का एक प्रदेश पुद्गलास्तिकाय के कितने प्रदेशों को अवगाहे है ? हे गौतम ! अनन्त प्रदेशों को अवगाहे है । अहो भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय का एक प्रदेश काल के कितने समयों को अवगाहे है ? हे गौतम ! कदाचित् अवगाहे है और कदाचित् नहीं अवगाहे है। यदि अवगाहे है तो अनन्त समयों को अवगाहे है ।

अहो भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय के दो प्रदेश धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाहे हैं ? हे गौतम ! सिय (कदाचित्) एक , सिय दो प्रदेश अवगाहे हैं । इसी तरह अधर्मास्तिकाय और आशास्तिकाय का भी कह देना चाहिये।

अहो भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय के दो प्रदेश , जीवास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाहे हैं ? हे गौतम ! अनन्त प्रदेश अवगाहे हैं।

अहो भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय के दो प्रदेश पुद्गलास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाहे हैं ? हे गौतम ! अनन्त प्रदेश अवगाहे हैं ।

अहो भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय के दो प्रदेश काल के कितने प्रदेश अवगाहे हैं ? हे गौतम ! कदाचित् अवगाहे हैं, कदाचित् नहीं अवगाहे हैं । यदि अवगाहे हैं तो अनन्त समय अवगाहे हैं।

अहो भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय के तीन प्रदेश धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेश अवगाहे हैं ? हे गौतम ! सिय एक, सिय दो , सिय

तीन * प्रदेश अवगाहे हैं। इसी तरह अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय का भी कह देना चाहिए। जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और अद्धासमय का कथन पुद्गलास्तिकाय के दो प्रदेशी की तरह कह देना चाहिए। इस तरह धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय के विषय में एक-एक प्रदेश की वृद्धि करनी चाहिये। पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय और अद्धासमय के विषय में जिस तरह पुद्गलास्तिकाय के दो प्रदेशी का कथन किया है, उसी तरह कह देना चाहिए। यावत् दस प्रदेशों तक इसी तरह कह देना चाहिये अर्थात् जहां पुद्गलास्तिकाय के दस प्रदेश अवगाहे हैं वहां धर्मास्तिकाय का सिय एक प्रदेश, सिय दो प्रदेश, सिय तीन प्रदेश यावत् सिय दस प्रदेश अवगाहे हैं। जहां पुद्गलास्तिकाय के संख्यात प्रदेश अवगाहे हैं वहां धर्मास्तिकाय का सिय एक प्रदेश, सिय दो प्रदेश यावत् सिय दस प्रदेश यावत् संख्यात प्रदेश अवगाहे हैं। जहां पुद्गलास्तिकाय के संख्यात प्रदेश अवगाहे हैं वहां धर्मास्तिकाय का सिय एक प्रदेश, यावत् सिय संख्यात, सिय असंख्यात प्रदेश अवगाहे हैं। इसी तरह अनन्त प्रदेश अवगाहे का भी कह देना चाहिये।

** जब पुद्गलास्तिकाय के तीन प्रदेश आकाशास्तिकाय के एक प्रदेश को अवगाहता है तब धर्मास्तिकाय का एक प्रदेश अवगाहता है। जब आकाशास्तिकाय के दो प्रदेशों को अवगाहता है तब वे वहां धर्मास्तिकाय के दो प्रदेशों को अवगाहते हैं। जब आकाशास्तिकाय के तीन प्रदेशों को अवगाहता है तब वे वहां धर्मास्तिकाय के तीन प्रदेशों को अवगाहते हैं।*

अहो भगवन् ! काल का एक समय धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों को अवगाहे है ? हे गौतम ! एक प्रदेश को अवगाह्या है। इसी तरह अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय का भी कह देना चाहिए। अहो भगवन् ! काल का एक समय जीवास्तिकाय के कितने प्रदेशों को अवगाहे है ? हे गौतम ! अनन्त प्रदेशों को अवगाहे हैं ? इसी तरह पुद्गलास्तिकाय और काल का भी कह देना चाहिए। (अनन्त प्रदेशों को अवगाहे हैं)।

४. स्कन्ध से प्रदेश आसरी– अहो भगवन् ! धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों को अवगाहे है ? हे गौतम ! एक भी नहीं अवगाहे है। अहो भगवन् ! धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों को अवगाहे है ? हे गौतम ! अनन्त प्रदेशों को अवगाहे है। इसी तरह पुद्गलास्तिकाय और काल का कह देना चाहिए। (अनन्त प्रदेशों को अवगाहे है)।

अहो भगवन् ! धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों को अवगाहे है ? हे गौतम ! असंख्यात प्रदेशों को अवगाहे है । अहो भगवन् ! अधर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों को अवगाहे है । हे गौतम ! एक भी नहीं अवगाहे है। अहो भगवन् ! अधर्मास्तिकाय आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेशों को अवगाहे है ? हे गौतम ! एक भी नहीं अवगाहे है। अहो भगवन् ! अधर्मास्तिकाय आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेशों को अवगाहे है । हे गौतम ! असंख्यात प्रदेशों को अवगाहे है। अहो भगवन् ! अधर्मास्तिकाय जीवास्तिकाय के कितने प्रदेशों को अवगाहे है ? हे गौतम ! अनन्त प्रदेशों को अवगाहे है। इसी तरह पुद्गलास्तिकाय और काल का भी कह देना चाहिए।

अहो भगवन् ! आकाशास्तिकाय धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों को अवगाहे है ? हे गौतम ! असंख्यात प्रदेशों को अवगाहे है । इसी तरह अधर्मास्तिकाय का भी कह देना चाहिए। अहो भगवन् ! आकाशास्तिकाय आकाशास्तिकाय के कितने प्रदेशों को अवगाहे है ? हे गौतम ! एक भी नहीं अवगाहे है। अहो भगवन् ! आकाशास्तिकाय जीवास्तिकाय के कितने प्रदेशों को अवगाहे है ? हे गौतम ! अनन्त प्रदेश को अवगाहे हैं। इसी तरह पुद्गलास्तिकाय और काल का कह देना चाहिए।

अहो भगवन् ! जीवास्तिकाय धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों को अवगाहे है ? हे गौतम ! असंख्यात प्रदेशों को अवगाहे है । इसी तरह अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय का भी कह देना चाहिए। जीवास्तिकाय जीवास्तिकाय के कितने प्रदेशों को अवगाहे है ? हे गौतम ! एक भी नहीं अवगाहे है। अहो भगवन् ! जीवास्तिकाय पुद्गलास्तिकाय के कितने प्रदेश को अवगाहे है ? हे गौतम ! अनन्त प्रदेशों को अवगाहे है। अहो भगवन् ! जीवास्तिकाय काल के कितने समयों को अवगाहे है ? हे गौतम ! अनन्त समयों को अवगाहे है।

अहो भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों को अवगाहे है ? हे गौतम ! असंख्यात प्रदेशों को अवगाहे है । इसी तरह अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय का भी कह देना चाहिए। अहो भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय जीवास्तिकाय के कितने प्रदेशों को अवगाहे है ? हे गौतम ! पुद्गलास्तिकाय पुद्गलास्तिकाय के कितने प्रदेशों को अवगाहे है ? हे गौतम ! एक भी नहीं अवगाहे है। अहो भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय काल के कितने समयों को अवगाहे है ? हे गौतम ! अनन्त समयों को अवगाहे है।

अहो भगवन् ! काल धर्मास्तिकाय के कितने प्रदेशों को अवगाहे है। हे गौतम ! असंख्यात प्रदेशों को अवगाहे है। इसी तरह अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय का कह देना चाहिए। अहो भगवन् ! काल जीवास्तिकाय के कितने प्रदेशों को अवगाहे हैं । हे गौतम ! अनन्त प्रदेशों को अवगाहे है। इसी तरह पुद्गलास्तिकाय का भी कह देना चाहिए। अहो भगवन् ! काल के कितने समयों को अवगाहे है ? हे गौतम ! एक भी नहीं अवगाहे है।

३. जीव-अवगाढादि द्वार का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक तेरहवां, उद्देशा चौथा)

१. जीवावगाढद्वार– अहो भगवन् ! जहां पृथ्वीकायिक एक जीव अवगाढ (अवगाह्य) रहा हुआ है, वहां दूसरे पृथ्वीकायिक जीव कितने रहे हुए हैं ? हे गौतम ! असंख्याता रहे हुए हैं। अहो भगवन् ! वहां अप्काय के कितने जीव रहे हुए हैं ? हे गौतम ! असंख्याता रहे हुए हैं। इसी तरह तेउकाय के भी असंख्यात और वायुकाय के भी असंख्यात जीव रहे हुए हैं । वनस्पतिकाय के अनन्त जीव रहे हुए हैं ।

जिस तरह से पृथ्वीकायिक का कहा, उसी तरह से अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय का भी कह देना चाहिए। * ये पांच स्थावर के २५ आलापक हुए।

** पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय और वायुकाय इन चार स्थावरों का स्वस्थान और परस्थान में 'असंख्यात' कहना चाहिए और वनस्पति का स्वस्थान और परस्थान में 'अनन्त' कहना चाहिए।*

२. अस्तिकायनिषीदनद्वार– अहो भगवन् ! धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय के विषय क्या कोई जीव बैठने, खड़ा रहने, सोने, चलने में समर्थ है ? हे गौतम ! णो इणट्ठे समट्ठे (कोई जीव ऐसा करने में समर्थ नहीं)। किन्तु दीपक के प्रकाश के दृष्टांत + अनुसार अनन्त जीव अवगाहे हुए हैं।

३. बहुसमद्वार– अहो भगवन् ! लोक का समभाग (प्रदेशों की वृद्धि और हानि रहित बराबर भाग) कहां पर है ? लोक का सबसे संक्षिप्त (संकड़ा) भाग कहां पर है ? हे गौतम ! इस रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर के नीचे का जो क्षुद्र (लघु) प्रतर है, वहां लोक का समभाग * है और वहीं पर लोक का सबसे संक्षिप्त

+ जैसे कोई कूटागारशाला हो, वह अन्दर और बाहर से लीपी हुई हो, वह चारों ओर से ढकी हुई हो और उसके द्वार भी बन्द हों। उस कूटागारशाला के ठीक बीच में एक दो तीन यावत् एक हजार दीपक जलाये जायं। हे गौतम ! क्या उस समय उन दीपकों का प्रकाश परस्पर मिल कर तथा स्पर्श कर एक दूसरे के साथ एक रूप हो जाता है ? हां, भगवन् ! एकरूप हो जाता है। हे गौतम ! उन दीपकों के उस प्रकाश पर क्या कोई पुरुष खड़ा रह सकता है ? बैठ सकता है ? सो सकता है ? अहो भगवन् ! णो इणट्ठे समट्ठे (कोई भी पुरुष ऐसा नहीं कर सकता है)। परन्तु उस प्रकाश में अनन्त जीव रहे हैं। इसी प्रकार धर्मास्तिकायादि में भी अनन्त जीव रहे हुए हैं।

* इन दोनों खुड्डाग प्रतरों से शुरू होकर नीचे प्रतरों की वृद्धि होती गई है। यह खुड्डाग प्रतर तिर्च्छालोक के संभव होते हैं, क्योंकि

(संकड़ा) भाग है ।

४. विषमद्वार– अहो भगवन् ! लोक का विषम (वक्र) भाग कहां पर है ? हे गौतम ! पांचवें ब्रह्मदेवलोक के रिष्टप्रतर के पास में लोक का वक्र भाग है ।

५. लोकसंस्थानद्वार– अहो भगवन् ! लोक का संठाण (संस्थान-आकार) कैसा है ? हे गौतम ! लोक का संठाण उल्टे रखे हुए शरावला के ऊपर एक सीधे रखे हुए शरावला के ऊपर उल्टा रखा हुआ शरावला के आकार है । अधोलोक का संठाण तिपाई के आकार है । तिर्च्छालोक का संठाण झालर के आकार है। ऊर्ध्वलोक का संठाण मृदंग के आकार है। अलोक का संठाण पोले गोले के आकार है ।

६. अल्पबहुत्वद्वार– अहो भगवन् ! अधोलोक, तिर्च्छालोक, ऊर्ध्वलोक में कौन किससे विशेषाधिक है ? हे गौतम ! सबसे थोड़ा तिर्च्छालोक है, उससे ऊर्ध्वलोक असंख्यातगुणा है, उससे अधोलोक विसेसाहिया (विशेषाधिक) है ।

४. वेदना निर्जरा का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक छठा, उद्देशा पहला)

महावेयणे य वत्थे, कद्दमखंजण कए य अहिगरणी ।
तणहत्थे य कवल्ले, करण महावेयणा जीवा ।।

तिर्च्छालोक १८०० योजन का है। ८ रुचक प्रदेशों से ९०० योजन ऊपर और ९०० योजन नीचे का है। ये दोनों प्रतर सब से छोटे हैं, तत्त्व केवलीगम्य।

१. अहो भगवन् ! क्या जो महावेदना वाला है वह महानिर्जरा वाला है और जो महानिर्जरा वाला है वह महावेदना वाला है ? हां गौतम ! जो महावेदना वाला है वह महानिर्जरा वाला है और जो महानिर्जरा वाला है वह महावेदना वाला है ।

२. अहो भगवन् ! क्या महावेदना वाले और अल्पवेदना वाले जीवों में जो जीव प्रशस्त निर्जरा वाला है वह श्रेष्ठ है ? हां गौतम ! महावेदना वाले और अल्पवेदना वाले जीवों में जो जीव प्रशस्त निर्जरा वाला है, वह श्रेष्ठ है ।

३. अहो भगवन् ! क्या छठी नरक के और सातवीं नरक के नैरयिक श्रमण निर्ग्रन्थों से महानिर्जरा वाले हैं ? हे गौतम ! णो इणट्ठे समट्ठे (यह बात नहीं है) । अहो भगवन् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! जैसे दो वस्त्र हैं, उनमें से एक तो कर्दम (कीचड़) के रंग से रंगा हुआ है, महा चिकनाई के कारण पक्का रंग लगा हुआ है और एक वस्त्र खंजन (काजल) के रंग में रंगा हुआ है, चिकनाई नहीं लगी हुई है तो हे गौतम ! इन दोनों वस्त्रों में से कौन सा वस्त्र कठिनता से धोया जाता है, कठिनता से दाग छुड़ाये जाते हैं, कठिनता से उज्ज्वल (निर्मल) किया जाता है और कौन सा वस्त्र सुखपूर्वक धोया जाता है यावत् सुखपूर्वक निर्मल किया जाता है ? अहो भगवन् ! कर्दम रंग से रंगा हुआ वस्त्र कठिनता से धोया जाता है यावत् कठिनता से निर्मल होता है और खंजन रंग से रंगा हुआ वस्त्र सुखपूर्वक धोया जाता है यावत् सुखपूर्वक निर्मल होता है । हे गौतम ! इसी तरह नैरयिकों के कर्म गाढ़े, चिकने, श्लिष्ट, खिलीभूत (निकाचित) किये हुए हैं, जिससे

महावेदना वेदते हैं, तो भी श्रमण निर्ग्रन्थों की अपेक्षा महानिर्जरा नहीं कर सकते हैं । हे गौतम ! जैसे खंजन से रंगा हुआ वस्त्र सुखपूर्वक धोया जाता है, इसी तरह श्रमण निर्ग्रन्थों के कर्म तप संयम ध्यानादि से पतले शिथिल निर्बल असार किये हुए हैं, जिससे अल्पवेदना वेदते हैं तो भी महानिर्जरा करते हैं । जैसे सूखे हुए घास में अग्नि डालने से घास तुरन्त भस्म हो जाता है तथा गर्म धगधगते लोहे के गोले पर जल की बूंद डालने से वह बूंद तुरन्त भस्म हो जाती है, इसी तरह श्रमण निर्ग्रन्थ महानिर्जरा करते हैं ।

अहो भगवन् ! जीव महावेदना महानिर्जरा किससे करता है ? हे गौतम ! करण से करता है । अहो भगवन् ! करण कितने प्रकार का है ? हे गौतम ! करण चार प्रकार का है– १ मनकरण, २ वचनकरण, ३ कायाकरण, ४ * कर्मकरण । नारकी में करण पाये जाते हैं ४ अशुभ, अशुभकरण से असातावेदना वेदते हैं, कदाचित् सातावेदना भी वेदते हैं । देवता में करण पाये जाते हैं ४ शुभ, शुभकरण से सातावेदना वेदते हैं, कदाचित् असातावेदना भी वेदते हैं ! पांच स्थावर में करण पाये जाते हैं २ (कायाकरण, कर्मकरण)। तीन विकलेन्द्रिय में करण पाये जाते हैं ३ (कायाकरण, वचनकरण, कर्मकरण) । तिर्यन्च पंचेन्द्रिय में और मनुष्य में करण पाये जाते हैं ४ । इन औदारिक के १० दण्डक में शुभाशुभ करण से वेमायाए (विमात्रा-विचित्र प्रकार से

** कर्मकरण-कर्मों के बन्धन, संक्रमण आदि में निमित्तभूत जीव का वीर्य कर्मकरण कहलाता है।*

अर्थात् कभी साता कभी असाता) वेदना वेदते हैं ।

जीवों की अपेक्षा वेदना और निर्जरा के ४ भांगे होते हैं– १ महावेदना महानिर्जरा, २ महावेदना अल्पनिर्जरा, ३ अल्पवेदना महानिर्जरा, ४ अल्पवेदना अल्पनिर्जरा । पहले भांगे में पडिमाधारी साधु हैं, दूसरे भांगे में छठी, सातवीं नरक के नैरयिक हैं , तीसरे भांगे में शैलेशीप्रतिपन्न (चौदहवें गुणस्थान वाले) अनगार हैं , चौथे भांगे में अनुत्तर विमान के देवता हैं ।

५. देव देवी वैक्रिय करने संबंधी गणधरों की पृच्छा का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक तीसरा, उद्देशा पहला)

१. देवता में ५ बोल पाये जाते हैं– * इन्द्र, सामानिक, तायत्तीसग (त्रायस्त्रिंशक), लोकपाल, अग्रमहिषी देवियां । वाणव्यन्तर

---

* (१) इन्द्र– देवों के स्वामी को इन्द्र कहते हैं।
(२) सामानिक– जो ऋद्धि आदि में इन्द्र के समान होते हैं, किन्तु जिनमें सिर्फ इन्द्रपना नहीं होता, उन्हें सामानिक कहते हैं।
(३) तायत्तीसग– (त्रायस्त्रिंशक) जो देव मन्त्री और पुरोहित का काम करते हैं, वे तायत्तीसग कहलाते हैं।
(४) लोकपाल– जो देव सीमा की रक्षा करते हैं, वे लोकपाल कहलाते हैं।
(५) अग्रमहिषी देवी– इन्द्र की पटरानी अग्रमहिषी देवी कहला[illegible] है।

और ज्योतिषी देवों में तायत्तीसग और लोकपाल नहीं होते हैं, शेष तीन बोल (इन्द्र, सामानिक, अग्रमहिषी) होते हैं । ये सब ऋद्धि परिवार से सहित होते हैं । आवश्यकता पड़ने पर वैक्रिय करके देवता देवी के रूप बना सकते हैं ।

२. अहो भगवन् ! वैक्रिय करके कितना क्षेत्र भरने की इनमें शक्ति है ? हे गौतम ! * (अग्निभूति) ! ÷ जुवती-जुवाण

** १ इन्द्रभूति २ अग्निभूति ३ वायुभूति ये तीनों सगे भाई और गौतम गोत्री होने से तीनों को गौतम करके बोलाया है ।*

÷ शास्त्र में यह पाठ है–

से जहाणामए जुवइं जुवाणे हत्थेणं हत्थे गिण्हेंज्जा, चक्करस्स वा णाभी अरगा उत्ता सिया ।

अर्थ– जैसे जवान पुरुष काम के वशीभूत होकर जवान स्त्री के हाथ को मजबूती से अन्तर रहित पकड़ता है, जैसे गाड़ी के पहिये की धुरी आराओं से युक्त होती है, इसी तरह देवता और देवी वैक्रिय रूप करके जम्बूद्वीप को ठसाठस भर सकते हैं।

कोई आचार्य उपरोक्त पाठ का अर्थ इस तरह से करते हैं–

जहां बहुत से लोग इकट्ठे होते हैं, ऐसे मेले में जवान पुरुष जवान स्त्री का हाथ पकड़ कर चलता है। इस तरह से जवान पुरुष के साथ चलती हुई भी जवान स्त्री पुरुष से अलग दिखाई देती है। इसी तरह वैक्रिय किये हुए रूप मूल रूप से (वैक्रिय करने वाले से) संयुक्त होते हुए भी अलग अलग दिखाई देते हैं।

के दृष्टान्त से तथा आरा-नाभि के दृष्टान्त से दक्षिणदिशा के चमरेन्द्रजी सम्पूर्ण जम्बूद्वीप को भर देते हैं । तिरछा असंख्याता द्वीप, समुद्र भरने की शक्ति है (विषय की अपेक्षा), किन्तु कभी भरे नहीं, भरते नहीं और भरेंगे नहीं ।

उत्तरदिशा के बलीन्द्रजी जम्बूद्वीप झाझेरा (कुछ अधिक) जितना क्षेत्र भर देते हैं । तिरछा असंख्याता द्वीप, समुद्र भरने की शक्ति है (विषय की अपेक्षा), किन्तु कभी भरे नहीं, भरते नहीं और भरेंगे नहीं ।

जिस तरह असुरकुमार के इन्द्र का कहा, उसी तरह उनके सामानिक और तायत्तीसग का भी कह देना चाहिये । लोकपाल और अग्रमहिषी की तिरछा संख्याता द्वीप, समुद्र भरने की शक्ति है(विषय की अपेक्षा), किन्तु कभी भी भरे नहीं, भरते नहीं, भरेंगे नहीं ।

नवनिकाय के देवता, वाणव्यन्तर और ज्योतिषी देवता एक जम्बूद्वीप भर देते हैं । तिरछा संख्यात द्वीप, समुद्र भरने की शक्ति है (विषय की अपेक्षा), किन्तु कभी भरे नहीं, भरते नहीं, भरेंगे नहीं ।

पहले देवलोक के पांचों ही बोल (इन्द्र, सामानिक, तायत्तीसग, लोकपाल, अग्रमहिषी), दो जम्बूद्वीप जितना क्षेत्र भर

जैसे बहुत से आराओं से युक्त धुरी घन होती है और उसके बीच में पोलार बिलकुल नहीं रहती। इसी तरह से वैक्रिय किये हुए रूप मूल रूप से प्रतिबद्ध रहते हैं। ऐसे वैक्रिय रूप करके जम्बूद्वीप को ठसाठस भर देते हैं।

देते हैं । दूसरे देवलोक के देव, दो जम्बूद्वीप झाझेरा, तीसरे देवलोक के देव ४ जम्बूद्वीप, चौथे देवलोक के देव ४ जम्बूद्वीप झाझेरा, पांचवें देवलोक के देव ८ जम्बूद्वीप, छठे देवलोक के देव ८ जम्बूद्वीप झाझेरा, सातवें देवलोक के देव १६ जम्बूद्वीप, आठवें देवलोक के देव १६ जम्बूद्वीप झाझेरा, नवमें दसवें देवलोक के देव ३२ जम्बूद्वीप, ग्यारहवें बारहवें देवलोक के देव ३२ जम्बूद्वीप झाझेरा क्षेत्र भर देते हैं और शक्ति(विषय की अपेक्षा), असंख्याता द्वीप, समुद्र भरने की है किन्तु कभी भरे नहीं, भरते नहीं और भरेंगे नहीं ।

पहले दूसरे देवलोक के इन्द्र, सामानिक और तायत्तीसग इन तीन की तिरछा असंख्यात द्वीप, समुद्र भरने की शक्ति है और लोकपाल तथा अग्रमहिषी की तिरछा संख्यात द्वीप, समुद्र भरने की शक्ति है । तीसरे देवलोक से बारहवें देवलोक तक सब की (इन्द्र, सामानिक, तायत्तीसग, लोकपाल, अग्रमहिषी) तिरछा असंख्यात द्वीप, समुद्र भरने की शक्ति है (विषय की अपेक्षा), किन्तु कभी भरे नहीं, भरते नहीं और भरेंगे नहीं ।

गाथा–

छट्ठट्ठम मासो उ अद्धमासो वासाइं अट्ठ छम्मासा ।
तीसय कुरुदत्ताणं तवभत्त परिण्णा परियाओ ।।
उच्चत्त विमाणाणं पाउब्भव पेच्छणा य संलावे ।
किंच्चि विवादुप्पत्ती, सणंकुमारे य भवियत्तं ।।

अर्थ– श्रमण भगवान् महावीर के शिष्य तिष्यक अनगार ८ वर्ष दीक्षा पाल कर बेले-बेले तपस्या करके एक मास का

संलेखना संथारा करके आलोयणा करके काल के अवसर पर काल करके प्रथम देवलोक के तिष्य विमान में शक्रेन्द्रजी के सामानिक देव हुए । महाऋद्धिवंत हुए । इनकी वैक्रियशक्ति शक्रेन्द्रजी के माफिक है ।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के शिष्य कुरुदत्त अनगार ने छह मास दीक्षा पाली । तेले-तेले तपस्या करते हुए सूर्य की आतापना ली । अर्द्धमास की संलेखना संथारा करके आलोयणा करके काल के अवसर पर काल करके दूसरे देवलोक में कुरुदत्त विमान में ईशानेन्द्रजी के सामानिक देव हुए । महाऋद्धिवंत हुए । इनके वैक्रिय की शक्ति ईशानेन्द्रजी के समान है । शक्रेन्द्रजी के विमान से ईशानेन्द्रजी का विमान करतल (हथेली) के दृष्टान्त माफक कुछ ऊंचा है और शक्रेन्द्रजी का विमान उससे कुछ नीचा है । कोई काम हो तो ईशानेन्द्रजी शक्रेन्द्रजी को बुलाते हैं तब शक्रेन्द्रजी ईशानेन्द्रजी के पास दूसरे देवलोक में जाते हैं । ईशानेन्द्रजी के बुलाने पर अथवा बिना बुलाने पर भी शक्रेन्द्रजी उनके पास जाते हैं परन्तु ईशानेन्द्र जी बुलाने पर ही पहले देवलोक में शक्रेन्द्रजी के पास चले जाते हैं । इसी तरह बातचीत सलाह-मशविरा कामकाज करते हैं। किसी समय शक्रेन्द्रजी और ईशानेन्द्रजी दोनों में परस्पर कोई विवाद पैदा हो जाय, तब वे दोनों इन्द्र इस तरह विचार करते हैं कि सनत्कुमारेन्द्रजी (तीसरे देवलोक के इन्द्र) आवें तो अच्छा हो। तब सनत्कुमारेन्द्रजी का आसन चलायमान होता है । वे आकर दोनों इन्द्रों को समझा देते हैं, उनका विवाद मिटा देते हैं । सनत्कुमार जी साधु साध्वी

श्रावक श्राविका इन चार तीर्थ के बड़े हितकारी, सुखकारी, पथ्यकारी, अनुकंपक, (अनुकम्पा करने वाले) हैं । निःश्रेयस् (कल्याण) चाहने वाले, हित-सुख-पथ्य चाहने वाले हैं । * इसलिये वे भवी, समदृष्टि, सुलभबोधि, परित्तसंसारी, आराधक, चरम हैं । सनत्कुमारेन्द्रजी की स्थिति ७ सागरोपम की है । वहां से (देवलोक से) चवकर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध बुद्ध मुक्त होवेंगे यावत् सब दुःखों का अन्त करेंगे ।

६. ग्रामादि विकुर्वणा का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक तीसरा, उद्देशा छठा)

१. अहो भगवन् ! क्या राजगृह नगर में रहा हुआ भावितात्मा अनगार मायीमिथ्यादृष्टि वीर्यलब्धि, वैक्रियलब्धि विभंगज्ञानलब्धि से वाणारसी नगरी वैक्रिय कर राजगृही नगरी का रूप जानता देखता है ? हां, गौतम ! जानता, देखता है । अहो भगवन् ! क्या वह तथाभाव (जैसा है वैसा) से जानता व देखता है या अन्यथाभाव (विपरीत) से जानता देखता है ? हे गौतम ! वह तथाभाव से नहीं जानता, नहीं देखता किन्तु अन्यथाभाव से जानता, देखता है । अहो भगवन् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! उसको विभंगज्ञान, विपरीतदर्शन होने से वह अन्यथाभाव से जानता, देखता है ।

** पूर्व भव में ये चार तीर्थ (साधु साध्वी श्रावक श्राविका) के हित, सुख, कल्याण के इच्छुक थे, ऐसी धारणा है।*

२. अहो भगवन् ! क्या वाणारसी में रहा हुआ मायीमिथ्यादृष्टि भावितात्मा अनगार राजगृहीनगरी वैक्रिय कर वाणारसी का रूप जानता, देखता है ? हां, गौतम ! जानता देखता है यावत् उसका विभंगज्ञान, विपरीतदर्शन होने से वह अन्यथाभाव से जानता, देखता है (वह इस तरह जानता है कि मैं राजगृही में रहा हुआ हूं और वाणारसी वैक्रिय कर वाणारसी का रूप जानता, देखता हूं) ।

३. अहो भगवन् ! क्या मायीमिथ्यादृष्टि भावितात्मा अनगार राजगृही और वाणारसी के बीच में एक बड़ा नगर वैक्रिय कर उसका रूप जानता व देखता है ? हां, गौतम ! वह इस तरह जानता, देखता है कि यह राजगृही है, यह वाणारसी है, यह इन दोनों के बीच में एक बड़ा नगर है परन्तु वह ऐसा नहीं जानता कि यह तो मैंने स्वयं वैक्रिय किया है ।

इस प्रकार इन तीनों ही आलापकों में विपरीतदर्शन से तथाभाव (सच्ची बात) से नहीं जानता, नहीं देखता है किन्तु अन्यथा भाव से जानता, देखता है ।

४-५-६. चौथा, पांचवां, छठा आलापक समदृष्टि का कहना चाहिए । इन तीनों ही आलापकों में समदृष्टि अवधिज्ञानी वैक्रियलब्धिवन्त भावितात्मा अनगार सम्यक्दर्शन से तथाभाव (जैसा है वैसा ही) जानता, देखता है, अन्यथाभाव (विपरीत) नहीं जानता, नहीं देखता है ।

७. अहो भगवन् ! क्या समदृष्टि अवधिज्ञानी वैक्रिय लब्धिवन्त भावितात्मा अनगार बाहर के पुद्‌गलों को लिये बिना

ग्राम, नगर यावत् सन्निवेश के रूप वैक्रिय कर सकता है ? हे गौतम ! णो इणट्ठे समट्ठे (ऐसा नहीं कर सकता) ।

८. अहो भगवन् ! क्या समदृष्टि अवधिज्ञानी वैक्रिय-लब्धिवन्त भावितात्मा अनगार बाहर के पुद्गलों को लेकर ग्राम, नगर यावत् सन्निवेश के रूप वैक्रिय कर सकता है ? हां, गौतम ! कर सकता है, सम्पूर्ण जम्बूद्वीप को ठसाठस भरने की शक्ति है (विषय की अपेक्षा), किन्तु ऐसा कभी किया नहीं, करते नहीं और करेंगे नहीं ।

७. तुल्य का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक चौदहवां, उद्देशा सातवां)

१. अहो भगवन् ! तुल्य कितने प्रकार के कहे गये हैं ? हे गौतम ! तुल्य छः प्रकार के कहे गये हैं– १. द्रव्यतुल्य, २. क्षेत्रतुल्य, ३. कालतुल्य, ४. भवतुल्य, ५. भावतुल्य, ६. संठाण (संस्थान) तुल्य ।

२. अहो भगवन् ! द्रव्यतुल्य किसे कहते हैं ? हे गौतम ! एक परमाणुपुद्गल दूसरे परमाणुपुद्गल के साथ द्रव्यतुल्य है । परन्तु परमाणुपुद्गल, परमाणुपुद्गल के सिवाय दूसरे पदार्थों के साथ द्रव्यतुल्य नहीं है। जैसे एक परमाणुपुद्गल दो प्रदेशी स्कन्ध, तीन प्रदेशी स्कन्ध यावत् दस प्रदेशी स्कन्ध वगैरह के साथ में द्रव्यतुल्य नहीं है । इसी तरह दो प्रदेशी स्कन्ध (अन्य) दो प्रदेशी स्कन्ध के सिवाय दूसरे पदार्थ के साथ द्रव्य से तुल्य नहीं हैं । इसी

तरह तीन प्रदेशी स्कन्ध तीन प्रदेशी स्कन्ध के सिवाय यावत् दस प्रदेशी स्कन्ध दस प्रदेशी स्कन्ध के सिवाय दूसरे पदार्थ के साथ द्रव्यतुल्य नहीं है । तुल्य संख्यात प्रदेशी स्कन्ध तुल्य संख्यात प्रदेशी स्कन्ध के साथ तुल्य है । तुल्य संख्यात प्रदेशी स्कन्ध तुल्य संख्यात प्रदेशी स्कन्ध के सिवाय दूसरे पदार्थ के साथ द्रव्यतुल्य नहीं है । इसी तरह तुल्य असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध, तुल्य अनन्त प्रदेशी स्कन्ध का कह देना चाहिए ।

३. अहो भगवन् ! क्षेत्रतुल्य किसे कहते हैं ! हे गौतम ! एक आकाशप्रदेश में रहा हुआ पुद्गलद्रव्य, एक आकाशप्रदेश में रहे हुए पुद्गलद्रव्य के साथ में क्षेत्रतुल्य है । परन्तु एक आकाशप्रदेश में रहा हुआ पुद्गलद्रव्य दो आकाशप्रदेशों में रहे हुए पुद्गलद्रव्य के साथ तुल्य नहीं है । इसी तरह दस आकाशप्रदेश यावत् असंख्यात आकाशप्रदेश तक कह देना चाहिए । दो आकाशप्रदेश ओघाया पुद्गल दो आकाशप्रदेश ओघाया पुद्गलद्रव्य क्षेत्र की अपेक्षा तुल्य है । इस तरह यावत् तुल्य असंख्यात आकाशप्रदेश ओघाया स्कन्ध तक कह देना चाहिए ।

४. अहो भगवन् ! कालतुल्य किसे कहते हैं ? हे गौतम ! एक समय की स्थिति वाला पुद्गलद्रव्य, एक समय की स्थिति वाले पुद्गलद्रव्य के साथ कालतुल्य है । परन्तु एक समय से अधिक स्थिति वाले पुद्गल के साथ कालतुल्य नहीं है, जैसे एक समय की स्थिति का पुद्गल दो समय की स्थिति के पुद्गल के साथ काल-तुल्य नहीं है । द्रव्यतुल्य में कहा उस तरह सारा अधिकार कह देना चाहिए । इस तरह असंख्यात समय की स्थिति वाले द्रव्य तक

१२ बोल कह देने चाहिए ।

५. अहो भगवन् ! भवतुल्य किसको कहते हैं ? हे गौतम ! जो भव से तुल्य है, उसको भवतुल्य कहते हैं । जैसे नारकी जीव नारकी जीव के साथ भवतुल्य है । दूसरी गति के जीवों के साथ भवतुल्य नहीं है । इसी तरह तिर्यंच, मनुष्य और देव का कह देना चाहिए ।

६. अहो भगवन् ! भावतुल्य किसे कहते हैं ? हे गौतम ! भाव के दो भेद हैं– अजीवभाव और जीवभाव । अजीवभाव– जैसे एक गुण कालेवर्ण का पुद्गल एक गुण कालेवर्ण के पुद्गल के साथ भावतुल्य है, परन्तु एक गुण कालेवर्ण का पुद्गल दो गुण कालेवर्ण के पुद्गल के साथ भावतुल्य नहीं है । द्रव्यतुल्य में कहा उस तरह सारा अधिकार कह देना चाहिए । इस तरह अनन्त गुण काले तक १३ बोल कह देने चाहिए । २० X १३ = २६० आलापक हुए ।

जीव भाव के ६ भेद हैं * १ औदायिक, २ औपशमिक, ३

** १ कर्मों के उदय से उत्पन्न होने वाला जीव का परिणाम औदयिकभाव कहलाता है।*

२ कर्मों के उपशम से उत्पन्न होने वाला जीव का भाव-परिणाम औपशमिकभाव कहलाता है।

३ कर्मों के क्षय से उत्पन्न होने वाला जीव का परिणाम क्षायिकभाव कहलाता है।

४ कर्मों के क्षय तथा उपशम से उत्पन्न होने वाला जीव का परिणाम क्षायोपशमिकभाव कहलाता है। क्षायोपशमिकभाव में सिर्फ

क्षायिक, ४ क्षायोपशमिक, ५ पारिणामिक, ६ सान्निपातिक । औदयिकभाव औदयिकभाव के साथ भावतुल्य है किन्तु दूसरे भावों के साथ भावतुल्य नहीं है । इसी तरह औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, पारिणामिक, सान्निपातिक भावों का भी कह देना चाहिए ।

७. अहो भगवन् ! संठाण (संस्थान) तुल्य किसे कहते हैं ? हे गौतम ! संठाण के दो भेद हैं – अजीवसंठाण और जीवसंठाण । अजीवसंठाण के ५ भेद है * परिमंडल, वट्ट,

---

विपाकवेदन नहीं होता, प्रदेशवेदन होता है। औपशमिकभाव में विपाकवेदन और प्रदेशवेदन नहीं होते। क्षायोपशमिकभाव और औपशमिकभाव में यही अन्तर है।

५ जीव का अनादि काल से जो स्वाभाविक परिणाम है वह पारिणामिकभाव कहलाता है।

६ औदयिक आदि दो तीन भावों के संयोग से उत्पन्न होने वाला परिणाम सान्निपातिकभाव कहलाता है।

** आकारविशेष को संठाण (संस्थान) कहते हैं। इसके दो भेद हैं– जीवसंस्थान और अजीवसंस्थान। अजीवसंस्थान के पांच भेद हैं– (१) परिमण्डल– चूड़ी की तरह बाहर से गोल और मध्य में पोला होता है। इसके दो भेद हैं– घन और प्रतर। (२) वृत्त– कुम्हार के चाक (चक्र) के समान बाहर से गोल और अन्दर से पोलाण रहित होता है। इसके दो भेद हैं– घन और प्रतर। इसके प्रत्येक के दो-दो भेद होते हैं– समसंख्या वाले प्रदेशयुक्त और विषमसंख्या वाले प्रदेशयुक्त। (३) त्र्यस्र–त्रिकोण आकार वाला होता है।*

(वृत्त), तंस (त्र्यस्र) चउरंस (चतुरस्र), आयत । परिमंडलसंठाण परिमंडलसंठाण के साथ संठाणतुल्य हैं, किन्तु दूसरे संठाणों के साथ संठाणतुल्य नहीं है । इसी तरह वट्ट, तंस, चउरंस, आयत संठाण का कह देना चाहिए ।

* जीवसंठाण के छह भेद हैं– समचतुरस्र, न्यग्रोधपरिमंडल, सादि, कुब्ज, वामन, हुण्डक । समचतुरस्रसंठाण समचतुरंस्रसंठाण के साथ में संठाणतुल्य है किन्तु दूसरे संठाणों के साथ संठाणतुल्य नहीं है । इसी तरह न्यग्रोधपरिमंडल, सादि, कुब्ज, वामन और हुण्डक संठाण का भी कह देना चाहिये ।

कुल आलापक ३१८ (द्रव्य के १३ + क्षेत्र के १२ + काल के १२ + भव के ४ + अजीवभाव के २६० + जीवभाव के ६ + अजीवसंठाण के ५ + जीवसंठाण के ६ = ३१८) हुए ।

८. अधिकरण का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक सोलहवां, उद्देशा पहला)

---

(४) चतुरस्र (चतुष्कोण) चार कोनों वाला होता है। (५) आयात-डण्डे की तरह लम्बा होता है। इसके तीन भेद हैं– श्रेण्यायत, प्रतरायत, घनायत। इनके प्रत्येक के दो-दो भेद हैं– समसंख्या वाले प्रदेशयुक्त और विषमसंख्या वाले प्रदेशयुक्त। यह पांच प्रकार का संस्थान विस्रसा और प्रयोगसा होता है।

**संस्थानकर्म के उदय से जीवों का जो आकारविशेष होता है, उसको जीवसंस्थान कहते हैं। इसके समचौरस आदि छह भेद होते हैं।*

१. अहो भगवन् ! क्या अधिकरणी (एरण) पर हथौड़ा मारने से वायुकाय उत्पन्न होती है ? * हां गौतम ! होती है ।

२. अहो भगवन् ! क्या वायुकाय किसी दूसरे पदार्थ का + स्पर्श होने से मरती है या बिना स्पर्श हुए ही मरती है ? हे गौतम ! स्पर्श होने से मरती है, स्पर्श हुए बिना नहीं मरती है ।

३. अहो भगवन् ! जब वायुकाय मरती है तो क्या शरीर सहित भवान्तर में जाती है ? हे गौतम ! तैजस्, कार्मण की अपेक्षा शरीरसहित जाती है और औदारिक, वैक्रिय की अपेक्षा शरीररहित जाती है ।

४. अहो भगवन् ! सिगड़ी में अग्निकाय कितने काल तक सचित्त रहती है ? हे गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट

** एरण पर हथौड़ा मारते समय एरण व हथौड़े के अभिघात से वायुकाय उत्पन्न होती है, वह अचित्त होती है, किन्तु उससे सचित्त वायुकाय की हिंसा होती है।*

स्थानांगसूत्र में पांच प्रकार की अचित्त वायु कही गयी है– जोर जोर धम धम चलने से, लोहार की धमनी से, उच्छ्वासादि से, कपड़े निचोड़ने से या किसी वस्तु को पीसने दबाने से तथा पंखे से । इन पांचों प्रकार की अचित्त वायु से सचित्त वायु की हिंसा होती है।

+ पृथ्वीकायादि पांच स्थावर जीवों के साथ जब विजातीय जीवों का तथा विजातीय स्पर्श वाले पदार्थों का संघर्ष होता है, तब उनके शरीर का घात (विनाश) होता है, इस आशय को लेकर यह प्रश्न किया गया है । श्री आचारांगसूत्र के 'शस्त्रपरिज्ञा' नामक पहले अध्ययन में इसका विस्तार के साथ वर्णन किया गया है।

तीन अहोरात्र– रात-दिन तक सचित्त रहती है ।

५. अहो भगवन् ! लोह तपाने की भट्टी में लोहा की संडासी से लोह को ऊंचा–नीचा करने वाले पुरुष को कितनी क्रिया लगती हैं ? हे गौतम ! उस पुरुष को कायिकी आदि * पांचों क्रिया लगती हैं । इसी तरह जिन जीवों के शरीर से लोह बना, भट्टी बनी, संडासी बनी, धमण बनी, उन सब जीवों को पांच-पांच क्रिया लगती हैं ।

६. अहो भगवन् ! लोह की भट्टी में से लोह को संडासी से पकड़ कर एरण पर रखते हुए पुरुष को कितनी क्रिया लगती हैं ? हे गौतम ! कायिकी आदि पांच क्रिया लगती हैं ।

इसी तरह जिन जीवों के शरीर से लोह, संडासी, घण, हथौड़ा, एरण, एरण का लक्कड़, गर्म लोह को ठंडा करने की कुंडी और लुहारशाला (लुहार का कारखाना) बना है, उन सब जीवों को पांच-पांच क्रिया लगती हैं ।

७. अहो भगवन् ! क्या जीव + अधिकरण है या

** १ काइया (कायिकी), २ अहिगरणिया (अधिकरणिकी), ३ पाउसिया (प्राद्वेषिकी), ४ परितावणिया (परितापनिकी), ५ पाणाइवाइया (प्राणातिपातिकी)।*

+ हिंसा आदि पापकर्म के कारणभूत पदार्थों को अधिकरण कहते हैं। अधिकरण के दो भेद हैं– आन्तरिक और बाह्य। शरीर,इन्द्रियां आदि आंतरिक अधिकरण हैं । हल, कुदाला, धन–धान्य आदि परिग्रहरूप वस्तुएं बाह्य अधिकरण हैं। यह बाह्य और आन्तरिक अधिकरण जिसके हों वह अधिकरणी कहलाता है। इसलिए सशरीरी

अधिकरणी है ? हे गौतम ! + अविरति (ममत्व) परिणाम की अपेक्षा जीव अधिकरण भी है और अधिकरणी भी है । इस तरह २४ ही दण्डक में कह देना चाहिए ।

८. अहो भगवन् ! क्या जीव ÷ साधिकरणी है या निरधिकरणी है ? हे गौतम ! जीव साधिकरणी है किन्तु निरधिकरणी नहीं है । इस तरह २४ ही दण्डक में कह देना चाहिए ।

जीव के शरीरादि होने से अधिकरणी है और शरीरादि अधिकरण से कथंचित अभिन्न होने से अधिकरण है अर्थात् सशरीरी जीव अधिकरण और अधिकरणी दोनों है।

+ जो जीव विरति वाला होता है, उसके शरीरादि आन्तरिक और बाह्य परिग्रहरूप वस्तुएं होने पर भी उन पर ममत्व न होने के कारण वह अधिकरणी या अधिकरण नहीं कहलाता है। जो जीव अविरति वाला है, उसके ममत्व होने से वह अधिकरणी और अधिकरण कहलाता है।

÷ शरीरादि अधिकरण सहित जीव साधिकरणी कहलाता है। संसारी जीव के शरीर इन्द्रियादि रूप आन्तरिक अधिकरण तो हमेशा साथ ही रहते हैं। शस्त्रादि बाह्य अधिकरण निश्चित रूप से हमेशा साथ नहीं होते किन्तु अविरति रूप ममत्वभाव हमेशा साथ रहता है। इसलिए शस्त्रादि बाह्य अधिकरण की अपेक्षा भी जीव साधिकरणी कहलाता है। संयती (साधु) पुरुषों में अविरति का अभाव होने से शरीरादि होते हुए भी उनमें साधिकरणपना नहीं है।

९. अहो भगवन् ! क्या जीव * आत्माधिकरणी है या पराधिकरणी है या तदुभयाधिकरणी है ? हे गौतम ! अविरति की अपेक्षा जीव आत्माधिकरणी भी है, पराधिकरणी भी है और तदुभयाधिकरणी भी है । इसी तरह २४ दण्डक में कह देना चाहिए ।

१०. अहो भगवन् ! क्या जीवों का अधिकरण ÷ आत्मप्रयोग से होता ? या परप्रयोग से होता है या तदुभयप्रयोग से होता है ? हे गौतम ! अविरति की अपेक्षा तीनों से होता है । इसी तरह चौबीस ही दण्डक में कह देना चाहिए।

** पापारम्भ में स्वयं प्रवृत्ति करना आत्माधिकरणी कहलाता है, दूसरे से पापारंभ करवाना पराधिकरणी कहलाता है, स्वयं भी पापारंभ करना और दूसरों से भी करवाना तदुभयाधिरणी कहलाता है।*

÷ हिंसा आदि पाप कार्यों में प्रवृत्ति करने वाले मन के व्यापार से उत्पन्न अधिकरण आत्मप्रयोगनिर्वतित कहलाता है। दूसरे को हिंसादि पाप कार्यों में प्रवृत्ति कराने से उत्पन्न हुआ वचनादि अधिकरण परप्रयोगनिर्वतित कहलाता है। आत्मा द्वारा और दूसरे की प्रवृत्ति कराने द्वारा उत्पन्न हुआ अधिकरण तदुभयप्रयोगनिर्वतित कहलाता है।

स्थावरादि जीवों में वचनादि का व्यापार नहीं होता । इसलिए उनमें जो परप्रयोग आदि का अधिकरण कहा गया है, वह अविरतिभाव की अपेक्षा से जानना चाहिए ।

पांच शरीर, पांच इन्द्रियां और तीन योग, इन तेरह बोलों में से जो बोल जिसमें मिले, उन-उन बोलों को निपजाते (बांधते) हुए चौबीस ही दण्डक के जीव अविरति की अपेक्षा अधिकरणी भी हैं और अधिकरण भी हैं । आहारकशरीर प्रमादी साधु के होता है, इसलिए आहारकशरीर प्रमाद की अपेक्षा अधिकरण भी है और अधिकरणी भी है ।

९. एयणा चलणा का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक सत्रहवां, उद्देशा तीसरा)

१. अहो भगवन् ! क्या शैलेशी अवस्था को प्राप्त कर अनगार कंपता है, विशेष कंपता है, यावत् उन-उन भावों को परिणमता है ? हे गौतम ! परप्रयोग के बिना वह नहीं कंपता यावत् उन-उन भावों को नहीं परिणमता है, क्योंकि शैलेशी अवस्था में आत्मा अत्यन्त स्थिर हो जाती है । इसलिए परप्रयोग बिना नहीं कंपती ।

२. अहो भगवन् ! एजना (कंपना) कितने प्रकार की है ? हे गौतम ! एजना ५ प्रकार की हैं– * द्रव्य-एजना, क्षेत्र-एजना,

---

** योग द्वारा आत्मप्रदेशों का अथवा पुद्गलद्रव्यों का चलना (कांपना) एजना कहलाती है। उसके द्रव्यादि ५ भेद हैं– मनुष्यादि जीव द्रव्यों का अथवा मनुष्यादि जीव सहित पुद्गलों का कंपन द्रव्य-एजना कहलाती है। मनुष्यादि क्षेत्र में रहे हुए जीव का कंपन क्षेत्र-एजना कहलाती है। मनुष्यादि काल में रहे हुए जीव का कंपन काल-एजना कहलाती है। औदयिक आदि भावों में रहे हुए जीव का कंपन भाव-एजना कहलाती है। मनुष्यादि भव में रहे हुए जीव का कंपन भव-एजना कहलाती है।*

काल-एजना, भाव-एजना, भव-एजना ।

३. अहो भगवन् ! द्रव्य-एजना के कितने भेद हैं ? हे गौतम ! द्रव्य-एजना के ४ भेद हैं– + नैरयिकद्रव्य-एजना, तिर्यंचयोनिकद्रव्य-एजना, मनुष्यद्रव्य-एजना, देवद्रव्य-एजना । इसी तरह क्षेत्र-एजना, काल-एजना, भाव-एजना और भव-एजना के चार-चार भेद होते हैं । ये एजना के २० भेद हुए । इन बीस बोलों में जीव रहा, रहता है और रहेगा, कांपा, कांपता है और कांपेगा ।

४. अहो भगवन् ! 'चलना' कितने प्रकार की है ? हे गौतम ! चलना तीन प्रकार की है– शरीरचलना, इन्द्रियचलना, योगचलना ।

५. अहो भगवन् ! शरीरचलना के कितने भेद हैं ? हे गौतम ! शरीरचलना के ५ भेद हैं– औदारिकशरीरचलना यावत् कार्मणशरीरचलना ।

६. अहो भगवन् ! इन्द्रियचलना के कितने भेद हैं ? हे गौतम ! इन्द्रियचलना के ५ भेद हैं– श्रोत्रेन्द्रियचलना यावत् स्पर्शेन्द्रियचलना ।

७. अहो भगवन् ! योगचलना के कितने भेद हैं ? हे गौतम ! योगचलना के ३ भेद हैं– मनयोगचलना, वचनयोगचलना, काययोगचलना ।

+नैरयिक जीव नैरयिक शरीर में रहकर उस शरीर द्वारा जो एजना (कंपन) करते हैं, उसे नैरयिकद्रव्य-एजना कहते हैं। इसी प्रकार तिर्यंच, मनुष्य और देव संबंधी द्रव्य-एजना भी जान लेनी चाहिए।

ये चलना के १३ बोल हुए । जीव ने इन १३ बोलों में के बोलों को परिणमाया, परिणमाता है और परिणमावेगा । इसीलिए चला, चलता है और चलेगा । ये ३३ बोल एजना, चलना के हुए ।

८. अहो भगवन् ! १ संवेग (मोक्ष की अभिलाषा), २ निर्वेद (संसार से विरक्तता), ३ गुरु महाराज की तथा स्वधर्मियों की सेवा, ४ पापों की आलोचला (गुरु के सामने कहना), ५ निन्दा(आत्मा द्वारा दोषों की निन्दा), ६ गर्हा (गुरु के सामने अपने दोषों को प्रगट करना), क्षमापना, ८ उपशांतता, ९ श्रुतसहायता-श्रुत का अभ्यास, १० भाव-अप्रतिबद्धता (हास्यदि भावों के विषय में आसक्ति न रखना), ११ पापस्थानों से निवृत्त होना, १२ विविक्तशयनासनता (स्त्री आदि से रहित मकान और आसन का उपयोग करना), १३-१७ श्रोत्रेन्द्रियसंवर यावत् स्पर्शेन्द्रियसंवर, १८ योगपच्चक्खाण, १९ शरीरपच्चक्खाण, (शरीर में आसक्ति का त्याग), २० कषायपच्चक्खाण, २१ संभोगपच्चक्खाण (साधुसमुदाय एक मंडल में बैठ कर भोजन करे उसे संभोग कहते हैं । जिनकल्प को स्वीकार करने वाले मुनि इसका त्याग करते हैं, उसे संभोगपच्चक्खाण कहते हैं), २२ उपधिपच्चक्खाण, (अधिक वस्त्रादि का त्याग करना), २३ भत्तपच्चक्खाण (आहार का त्याग करना), २४ क्षमा, २५ विरागता, २६ भावसत्य, २७ योगसत्य, २८ करणसत्य (प्रतिलेखनादि क्रियाओं को यथार्थ करना), २९ मनसमाधारणया (मनसंगोपन-मन को वश में रखना), ३० वयसमाधारणया (वचनसंगोपन-वचन

को वश में रखना), ३१ कायसमाधारणया (कायसंगोपन-काया को वश में रखना), ३२ से ४४ क्रोध का त्याग, यावत् मिथ्यादर्शनशल्य का त्याग, ४५ ज्ञान-संपन्नता, ४६ दर्शनसंपन्नता, ४७ चारित्रसंपन्नता, ४८ वेदना-अहियासणया (क्षुधादि वेदना को सहन करना), ४९ मारणंतिय-अहियासणया (मारणान्तिक कष्ट आने पर भी सहनशीलता रखना) । अहो भगवन् ! इन सब पदों का अन्तिम क्या फल कहा है ? हे गौतम ! इन सब पदों का अन्तिम फल मोक्ष कहा है ।

१०. पृथ्वी-अप्-वायुकाय के उपपात के १११० आलापकों का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक सत्रहवां, उद्देशा ६ से ११ तथा शतक बीस, उद्देशा छह)

१. अहो भगवन् ! क्या पृथ्वीकायिक जीव रत्नप्रभानरक में मारणान्तिकसमुद्घात करके सौधर्म देवलोक में पृथ्वीकायपणे उत्पन्न हो सकते हैं ? हां, गौतम ! हो सकते हैं । अहो भगवन् ! उत्पन्न हो सकते हैं तो क्या पहले उत्पन्न होते हैं और पीछे आहार लेते हैं या पहले आहार लेते हैं और पीछे उत्पन्न होते हैं ? हे गौतम ! पहले उत्पन्न होते हैं और पीछे आहार लेते हैं या पहले आहार लेते हैं और पीछे उत्पन्न होते हैं *। अहो भगवन् !

** जब जीव मरणसमुद्घात करके पूर्वशरीर को सर्वथा छोड़ कर दड़ी (गेंद) की तरह तथा डेडका (मेंढक) की तरह उछलकर एक साथ सब आत्मप्रदेशों के साथ उत्पत्तिस्थान में जाता है, तब तो*

इसका क्या कारण ? हे गौतम ! पृथ्वीकायिक जीवों में तीन समुद्घात कहे गये हैं- वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घात । जब जीव मारणान्तिकसमुद्घात करता है तो + देशसमुद्घात भी करता है और सर्वसमुद्घात भी करता है । जब देशसमुद्घात करता है, तब पहले आहार लेता है और पीछे उत्पन्न होता है । जब सर्वसमुद्घात करता है, तब पहले उत्पन्न होता है और पीछे आहार लेता है ।

जिस तरह पहली नरक से निकलने का कहा, उसी तरह सातों नरक का कह देना । सातों नरकों से निकलकर पृथ्वीकायिक जीव बारह देवलोक, नवग्रैवेयक, अनुत्तरविमान और ईषत्प्राग्भारापृथ्वी (सिद्धशिला), इन १५ स्थानों में पृथ्वीकायपणे

पहले उत्पन्न होता है और पीछे पुद्गलग्रहण रूप आहार लेता है। जब मरणसमुद्घात करके इलिकागति से उत्पत्तिस्थान में जाता है, तब पहले आहार लेता है और पीछे उत्पन्न होता है।

+ मारणान्तिकसमुद्घात करते ही जब जीव की मृत्यु हो जाती है तब वह इलिकागति से उत्पत्तिस्थान में जाता है, उस समय जीव के कुछ अंश पूर्व शरीर में रहते हैं और कुछ अंश उत्पत्तिस्थान में जाते हैं, इसको 'देशसमुद्घात' कहते हैं।

जब जीव मारणान्तिकसमुद्घात से निवृत्त होकर पीछे मृत्यु को प्राप्त होता है, तब सब आत्मप्रदेशों को खींच कर डेडका (मेंढक) की गति की तरह एवं दड़ी (गेंद) की तरह उछल कर साथ उत्पत्तिस्थान में जाता है, उसे 'सर्वसमुद्घात' कहते हैं।

उत्पन्न होते हैं (१५ X ७ = १०५ आलापक) और इन १५ स्थानों से निकल कर पृथ्वीकायिकजीव सात नरकों में पृथ्वीकायपणे उत्पन्न होते हैं (१५ X ७ = १०५ आलापक) । इस तरह दोनों मिलकर २१० आलापक हुए ।

जिस तरह नरक का कहा उसी तरह ७ नरकों के छः आन्तरों में से निकल कर १५ स्थानों में उपजने का कह देना। इसके ९० (१५ X ६ = ९०) आलापक हुए ।

जिस तरह १५ स्थानों का कहा, उसी तरह १५ स्थानों के १० आन्तरों से * निकलकर ७ नरक में उत्पन्न होने का कह देना । इसके ७० आलापक (१० X ७ = ७०) हुए । इस प्रकार पृथ्वीकाय सम्बन्धी ३७० (२१० + ९० + ७० = ३७०) आलापक हुए । जिस तरह पृथ्वीकाय के ३७० आलापक कहे उसी तरह

** पहले दूसरे और तीसरे चौथे देवलोक के बीच का १ आन्तरा*
चौथे और पांचवें देवलोक के बीच का १ आन्तरा
पांचवें और छठे देवलोक के बीच का १ आन्तरा
छठे और सातवें देवलोक के बीच का १ आन्तरा
सातवें और आठवें देवलोक के बीच का १ आन्तरा
आठवें और नवमें दसवें देवलोक के बीच का १ आन्तरा
नवमें दसवें और ग्यारहवें बारहवें देवलोक के बीच का १ आन्तरा
ग्यारहवें बारहवें देवलोक और ग्रैवेयक के बीच का १ आन्तरा
ग्रैवेयक और अनुत्तर विमान के बीच का १ आन्तरा
अनुत्तर विमान और ईषत्प्राग्भापृथ्वी के बीच का १ आन्तरा
कुल १० आन्तरा

अप्काय के ३७० और वायुकाय के ३७० आलापक कह देना चाहिये । ये कुल १११० (३७० + ३७० + ३७० = १११०) आलापक हुए ।

११. गर्भ का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र शतक पहला, उद्देशा सातवां)

१. अहो भगवन् ! महान ऋद्धि, कान्ति, ज्योति, बल, सुख और महानुभाव वाल देव अपना च्यवनकाल (मृत्युसमय) नजदीक जान कर क्या लज्जित होता है ? अरति करता है और थोड़े समय तक आहार भी नहीं लेता, फिर पीछे क्षुधा (भूख) सहन नहीं होने से आहार करता है ? शेष आयु पूरी होने पर मनुष्यगति या तिर्यंचगति में उत्पन्न होता है ? हां गौतम ! देवता अपना च्यवनकाल नजदीक जानकर पूर्वोक्त प्रकार से चिन्ता करता है कि अब मुझे इन देवता संबंधी काम-भोगों को छोड़ कर मनुष्यादि की अशुचि पदार्थ वाली योनि में उत्पन्न होना पड़ेगा और वहां वीर्य रुधिर का आहार लेना पड़ेगा । ऐसा सोच कर वह लज्जित होता है, घृणा करता है, अरति करता है, फिर आयु क्षय होने पर मनुष्यगति या तिर्यंचगति में उत्पन्न होता है ।

२. अहो भगवन् ! गर्भ में उत्पन्न होता हुआ जीव क्या इन्द्रियसहित उत्पन्न होता है या इन्द्रियरहित उत्पन्न होता है ? हे गौतम ! द्रव्येन्द्रियों (कान, आंख, नाक, जीभ और स्पर्श) की अपेक्षा इन्द्रियरहित उत्पन्न होता है, क्योंकि द्रव्येन्द्रियां शरीर से संबंध रखती हैं और भावेन्द्रियों की अपेक्षा इन्द्रियसहित उत्पन्न

होता है ।

३. अहो भगवन् ! गर्भ में उत्पन्न होता हुआ जीव क्या सशरीरी (शरीरसहित) उत्पन्न होता है या अशरीरी (शरीररहित) उत्पन्न होता है ? हे गौतम ! औदारिक, वैक्रिय, आहारक इन तीन शरीरों की अपेक्षा शरीररहित उत्पन्न होता है, क्योंकि ये तीनों शरीर जीव के उत्पन्न होने के बाद उत्पन्न होते हैं । तैजसशरीर और कार्मणशरीर की अपेक्षा शरीरसहित उत्पन्न होता है, क्योंकि ये दोनों शरीर परभव में जीव के साथ रहते हैं, इनका जीव के साथ अनादि संबंध है।

४. अहो भगवन् ! गर्भ में उत्पन्न होता हुआ जीव सर्वप्रथम क्या आहार लेता है ? हे गौतम ! माता के रुधिर और पिता के वीर्य का सर्वप्रथम आहार लेता है । फिर माता जैसा आहार करती है, उसका एकदेश (भाग) आहार गर्भ में रहा हुआ जीव भी करता है, क्योंकि माता की नाड़ी का गर्भस्थ जीव की नाड़ी से संबंध है ।

५. अहो भगवन् ! क्या गर्भ में रहे हुए जीव के मल, मूत्र, श्लेष्म (बलगम), नाक का मैल, वमन और पित्त होते हैं ? हे गौतम ! णो इणट्ठे समट्ठे (गर्भ में रहे हुए जीव के मल, मूत्र, श्लेष्म, नाक का मैल, वमन और पित्त नहीं होते हैं) । गर्भस्थ जीव जो आहार करता है वह श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शेन्द्रियपणे तथा हाड, मज्जा (हाड की मींजी), केश, नखपणे परिणमाता है । क्योंकि गर्भस्थ जीव कवलाहार नहीं करता है, इसलिए उसके मल मूत्रादि नहीं होते हैं । वह सर्व

आहार करता है, सर्वपरिणमाता है, सर्व उच्छ्वास-नि:श्वास लेता है यावत् बार बार उच्छ्वास-नि:श्वास लेता है ।

६. अहो भगवन् ! जीव के माता के कितने अंग हैं और पिता के कितने अंग हैं ? हे गौतम ! १ मांस, २ रुधिर, (लोही) और ३ मस्तक, ये तीन अंग माता के हैं और १ हाड, २ मज्जा (हाड की मींजी) और ३ केश, दाढ़ी, रोम, नख, ये तीन अंग पिता के हैं ।

७. अहो भगवन् ! माता-पिता का अंश (प्रथम समय का लिया हुआ आहार) संतान के शरीर के कितने काल तक रहता है ? हे गौतम ! जब तक जीव का भवधारणीय शरीर रहता है, तब तक माता-पिता का अंश रहता है, परन्तु समय समय पर वह क्षीण होता जाता है यावत् आयुष्य समाप्त होने तक माता-पिता का कुछ न कुछ अंश रहता ही है । इसलिए इस शरीर पर माता-पिता का बहुत बड़ा उपकार है, इसी से यह जीवित है, इसलिए माता-पिता के उपकार को कभी नहीं भूलना चाहिए ।

८. अहो भगवन् ! गर्भ में मरा हुआ जीव क्या नरक में उत्पन्न हो सकता है ? हां गौतम ! कोई जीव नरक में उत्पन्न होता है और कोई नहीं होता ।

९. अहो भगवन् ! गर्भ में मरा हुआ जीव किस कारण से नरक में जाता है ? हे गौतम ! गर्भ में मरा हुआ संज्ञी (सन्नी) पंचेन्द्रिय, पूर्ण पर्याप्ति वाला वीर्यलब्धि वैक्रियलब्धि वाला जीव किसी समय अपने पिता पर चढ़ाई कर आये हुए शत्रु को सुनकर वैक्रियलब्धि से अपने आत्मप्रदेशों को गर्भ से बाहर

निकालता है और वैक्रियसमुद्घात करके चतुरंगिणी सेना तैयार करके शत्रु से संग्राम करता है । संग्राम करता हुआ वह जीव आयुष्य पूर्ण करे तो मर कर नरक से उत्पन्न होता है, क्योंकि उस समय वह जीव राज्य, धन, कामभोगादि का अभिलाषी है । अत: मरकर नरक * में जाता है ।

१०. अहो भगवन् ! क्या गर्भ में रहा हुआ जीव देवता में उत्पन्न हो सकता है ? हां, गौतम ! कोई जीव देवता में उत्पन्न होता है और कोई नहीं होता ।

११. अहो भगवन् ! गर्भ में रहा हुआ जीव मरकर किस कारण से देवता में उत्पन्न हो सकता है ? हे गौतम ! गर्भ में रहा हुआ संज्ञी (सन्नी) पंचेन्द्रिय पूर्णपर्याप्ति वाला, जीव तथारूप श्रमण माहन के पास एक भी आर्यवचन (धर्मवचन) सुन कर परम संवेग की श्रद्धा और धर्म पर तीव्र प्रेम होने से धर्म, पुण्य, स्वर्ग, मोक्ष का अभिलाषी शुद्ध चित्त, मन, लेश्या, अध्यवसाय में काल करे तो वह गर्भस्थ जीव मरकर स्वर्ग में उत्पन्न होता है ।

१२. अहो भगवन् ! गर्भ में जीव किस तरह से रहता है ? क्या समचित्त रहता है या पसवाड़े से रहता है या अधोमुख रहता है ? हे गौतम ! गर्भ में जीव समचित्त भी रहता है, पसवाड़े से भी रहता है और अधोमुख भी रहता है। जब माता सोती है तो गर्भ का जीव भी सोता है, जब माता जागती है तो गर्भ का जीव

** भगवतीसूत्र के चौबीसवें शतक में कहा है कि तिर्यंच जघन्य अन्तर्मुहूर्त वाला और मनुष्य जघन्य पृथक्त्वमास (२ महीने से लेकर ९ महीने तक) वाला नरक में जा सकता है।*

भी जागता है । माता सुखी रहे तो गर्भ का जीव भी सुखी रहता है और माता दुःखी रहे तो गर्भ का जीव भी दुःखी रहता है । प्रसव के समय मस्तक से या पैरों से गर्भ बाहर आता है । जो जीव पापी होता है वह प्रसव के समय योनि द्वार पर टेढ़ा हो कर आता है, इससे मृत्यु को प्राप्त हो जाता है । कदाचित्, शुभ कर्म के उदय से जीवित रहे तो दुर्वर्ण, दुर्गन्ध, दुःरस, दुःस्पर्श वाला और अनिष्ट कान्ति, अमनोज्ञ, हीनस्वर, दीनस्वर यावत् अनादेय वचन वाला और महान दुःख में जीवन व्यतीत करने वाला होता है। जिस जीव ने पूर्वभव में अशुभ कर्म न बांधे हों किन्तु शुभ कर्म बांधे हों तो वह इष्ट प्रिय वल्लभ सुस्वर वाला यावत् आदेय वचन वाला और परम सुख में जीवन व्यतीत करने वाला होता है । इसलिए शास्त्रकार फरमाते हैं कि जीव को सुकृत करना चाहिए जिससे क्रमशः तीर्थंकर भगवान् की आज्ञा का आराधन करके मोक्ष के अक्षय सुखों को प्राप्त करे । फिर जन्म जरा मरण के दुःखों से व्याप्त इस संसार में आना ही न पड़े, जन्म लेना ही न पड़े और गर्भ के दुःखों को देखना ही न पड़े ।

धर्म करो रे जीवड़ा, धर्म कियां सुख होय ।
धर्म करतां जीवड़ा, दुखिया न दीठा कोय । ।

श्री भगवतीजी सूत्र के दूसरे शतक के पांचवें उद्देशा में

१३. अहो भगवन् ! गर्भ की स्थिति कितनी है ? हे गौतम ! उदक (पानी) गर्भ की स्थिति जघन्य एक समय, उत्कृष्ट

६ मास की । तिर्यंचणी के गर्भ की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट ८ वर्ष की । मनुष्यणी के गर्भ की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट १२ वर्ष की । मनुष्यणी के गर्भ की कायस्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट २४ + वर्ष की है ।

१४. अहो भगवन् ! वीर्य कितने काल तक सचित्त रहता है ? हे गौतम ! तिर्यंचणी की योनि में प्रविष्ट हुआ तिर्यंच का वीर्य और मनुष्यणी की योनि में प्रविष्ट हुआ पुरुष का वीर्य जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट १२ मुहूर्त तक सचित्त रहता है, फिर विनष्ट हो जाता है ।

१५. अहो भगवन् ! एक भव में एक जीव के कितने पिता हो सकते हैं ? हे गौतम ! जघन्य १-२-३, उत्कृष्ट प्रत्येक (पृथक्त्व) सौ पिता हो सकते हैं ।

१६. अहो भगवन् ! एक भव संबंधित एक माता की कुक्षि में कितने जीव उत्पन्न हो सकते हैं ? हे गौतम ! जघन्य १-२-३, उत्कृष्ट प्रत्येक (पृथक्त्व) लाख जीव उत्पन्न हो सकते हैं ।

१७. अहो भगवन् ! मैथुन का कैसा पाप है ? हे गौतम ! जैसे किसी भूंगली नाल में रुई भरकर गर्म लोह की सलाई डाली जाये तो वह रुई जल कर भस्म हो जाती है, इस प्रकार का पाप

+ कोई पापी जीव माता के गर्भ में १२ वर्ष रह कर मर जावे और फिर उसी गर्भ में अथवा अन्य स्त्री के गर्भ में उत्पन्न होकर फिर १२ वर्ष रह सकता है, इस तरह २४ वर्ष तक रह सकता है ।

मैथुनसेवन करने वाले को लगता है ।

तंदुल वैयालिय पइण्णा से–

१८. अहो भगवन् ! पुत्र, पुत्री कैसे उत्पन्न होते हैं ? हे गौतम ! माता की दक्षिण (दाहिनी) कुक्षि में पुत्र उत्पन्न होता है और बांई कुक्षि में पुत्री उत्पन्न होती है, बीच में नपुंसक उत्पन्न होता है । ओज(रुधिर) अल्प और वीर्य ज्यादा हो तो पुत्र उत्पन्न होता है । ओज (रूधिर) ज्यादा और वीर्य थोड़ा हो तो पुत्री उत्पन्न होती है । ओज (रुधिर) और वीर्य बराबर हों तो नपुंसक होता है । यदि स्त्री स्त्री को सेवन करे तो बिम्ब होता है ।

१२. वीर्य का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक पहला, उद्देशा आठवां)

१. अहो भगवन् ! जीव के कितने भेद हैं ? हे गौतम ! जीव के तीन भेद हैं– एकान्त बालजीव, पण्डितजीव, बाल-पण्डित-जीव ।

२. अहो भगवन् ! एकान्त बालजीव, पण्डितजीव, बाल-पण्डितजीव किस गति का आयुष्य बांध कर किस गति में जाते हैं ? हे गौतम ! एकान्त बालजीव (मिथ्यात्वी) चारों गति (नारकी, तिर्यंच, मनुष्य, देवता) का आयुष्य बांधता है और जिस गति का आयुष्य बांधता है, उस गति में उत्पन्न होता है ।

३. एकान्त पण्डित में आयुष्यबंध की भजना है अर्थात् कदाचित् आयुष्यबंध करता है और कदाचित् नहीं करता है, क्योंकि

एकान्त पण्डितजीव की दो गति हैं– कोई जीव तो अन्तक्रिया करके उसी भव में मोक्ष चला जाता है, वह आयुष्यबंध नहीं करता है । जो अंतक्रिया नहीं करता वह वैमानिक देवगति का आयुष्यबंध करके वैमानिक देवों में उत्पन्न होता है ।

४. बाल-पण्डित जीव सिर्फ वैमानिक देवगति का आयुष्य बांध कर वैमानिक देवों में उत्पन्न होता है । नरक, तिर्यंच, मनुष्य इन तीन गतियों का आयुष्य नहीं बांधता है, क्योंकि यथारूप (साधु के आचार को शुद्ध पालने वाले) श्रमण माहन के पास एक भी आर्यवचन (धर्मवचन) सुन कर देशतः (आंशिक रूप से) त्याग, पच्चक्खाण करता है और देशतः पाप से निवृत्त होता है । इसलिए उपरोक्त तीन गतियों का आयुष्य नहीं बांधता है ।

५. समुच्चय जीव में और मनुष्य में बाल, पण्डित और बाल-पण्डित, ये तीनों बोल पाये जाते हैं । तिर्यंचपंचेन्द्रिय में बाल और बाल-पण्डित ये दो बोल पाये जाते हैं । शेष २२ दण्डकों में बाल, यह सिर्फ एक बोल पाया जाता है ।

६. अल्पाबोध (अल्पबहुत्व)– समुच्चय जीव में सबसे थोड़े पण्डित, उनसे बाल-पण्डित असंख्यातगुणा, उनसे बाल अनन्त गुणा। मनुष्य में सबसे थोड़े पण्डित, उनसे बाल-पण्डित संख्यातगुणा, उनसे बाल असंख्यातगुणा । तिर्यंचपंचेन्द्रिय में सबसे थोड़े बाल-पण्डित, उनसे बाल असंख्यातगुणा ।

७. अहो भगवन् ! दो पुरुष समान (सरीखी) चमड़ी वाले, समान उमर वाले, समान द्रव्य वाले, समान उपकरण (शस्त्र) वाले, वे पुरुष परस्पर एक दूसरे के साथ संग्राम (लड़ाई)

करें तो उनमें से एक जीतता है और एक हारता है, इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! जो पुरुष सवीर्य है वह जीतता है और जो पुरुष अवीर्य है वह हारता है । जिस पुरुष ने वीर्य को बाधाकारी (बाधा पहुंचाने वाले) कर्म नहीं बांधे हैं, नहीं स्पर्शे हैं, नहीं किये हैं यावत् वे कर्म सन्मुख नहीं आये हैं, उदयभाव में नहीं आये हैं, किन्तु उपशमभाव में हैं, वह पुरुष जीतता है । जो पुरुष अवीर्य है, वीर्य रहित कर्म बांधे हैं, स्पर्शे हैं, किये हैं, यावत् वे कर्म सन्मुख आये हैं, उदयभाव में आये हैं, उपशांत नहीं हैं, वह पुरुष हारता है ।

८. अहो भगवन् ! जीव सवीर्य है या अवीर्य है ? हे गौतम ! जीव सवीर्य भी है और अवीर्य भी है । अहो भगवन् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! जीव के दो भेद हैं– सिद्ध और संसारी । सिद्ध भगवान् तो अवीर्य हैं । संसारी के दो भेद हैं– शैलेशी-अवस्था को प्राप्त, और अशैलेशी-अवस्था को प्राप्त । शैलेशी-अवस्था को प्राप्त तो चौदहवें गुणस्थान वाले हैं, वे लब्धि-वीर्य की अपेक्षा तो सवीर्य हैं और करणवीर्य की अपेक्षा अवीर्य हैं। अशैलेशी अवस्था को प्राप्त तेरह गुणस्थान वाले जीव हैं, वे लब्धिवीर्य की अपेक्षा तो सवीर्य हैं और करणवीर्य की अपेक्षा जो जीव उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषकार-पराक्रम, इन पांचों शक्ति सहित हैं, वे सवीर्य हैं और जो पांच शक्ति रहित हैं वे अवीर्य हैं । मनुष्य के दण्डक को छोड़ कर बाकी २३ दण्डक के जीव लब्धि-वीर्य की अपेक्षा सवीर्य हैं और करणवीर्य की अपेक्षा उत्थान, कर्म आदि पांच शक्ति वाले तो सवीर्य हैं और पांच शक्ति रहित अवीर्य

हैं । मनुष्य में समुच्चय जीव की तरह कह देना, किन्तु सिद्ध भगवान् का कथन नहीं करना ।

१३. उच्छ्वास-निःश्वास का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक दूसरा, उद्देशा पहला)

१. अहो भगवन् ! द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीव आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास और बाहरी श्वासोच्छ्वास लेते हैं, इसको मैं जानता हूं, देखता हूं, परन्तु क्या पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास और बाहरी श्वासोच्छ्वास लेते हैं । हां, गौतम ! लेते हैं । अहो भगवन् ! ये किसका श्वासोच्छ्वास लेते हैं । हे गौतम ! द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव यावत् २८८ बोल का निर्व्याघातदशा में नियमा (निश्चित रूप से) छह दिशा का, व्याघातदशा में कदाचित् तीन दिशा का, कदाचित् चार दिशा का, कदाचित् पांच दिशा का लेते हैं । सूत्र श्री पन्नवणाजी * के अट्ठाईसवें आहारपद माफक कह देना चाहिए ।

२. अहो भगवन् ! क्या वायुकाय, वायुकाय का श्वासोच्छ्वास लेता है ? हां गौतम ! लेता है । अहो भगवन् ! क्या वायुकाय अनेक लाखों बार मरकर वायुकाय में उत्पन्न होता है ?

** श्री पन्नवणासूत्र के थोकड़ों के तीसरे भाग की प्रथमावृत्ति में पृष्ठ ६४ से ७१ तक में और द्वितीयावृत्ति में पृष्ठ ९५ से १०५ तक में देखिये ।*

हां, गौतम ! उत्पन्न होता है । अहो भगवन् ! क्या वायुकाय स्पर्श से मरता है या बिना स्पर्श किये ही मरता है ? हे गौतम ! वायुकाय स्पर्श से मरता है (सोपक्रमी आयुष्य की अपेक्षा), किन्तु बिना स्पर्श किये नहीं मरता । अहो भगवन् ! क्या वायुकाय स्वकाया के स्पर्श से मरता है अथवा परकाया के स्पर्श से मरता है ? हे गौतम ! वायुकाय स्वकाया के शस्त्र के स्पर्श से भी मरता है और परकाया के शस्त्र के स्पर्श से भी मरता है + । अहो भगवन् ! क्या वायुकाय शरीरसहित मरता है अथवा शरीररहित मरता है ? हे गौतम ! कथंचित् (किसी अपेक्षा से) शरीरसहित मरता है और कथंचित् (किसी अपेक्षा से) शरीररहित मरता है। अहो भगवन् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! वायुकाय में चार शरीर होते हैं – औदारिक, वैक्रिय, तैजस, कार्मण । औदारिक और वैक्रिय शरीर की अपेक्षा शरीररहित मरता है और तैजस कार्मण शरीर की अपेक्षा शरीरसहित मरता है ।

१४. मडाई निर्ग्रन्थ का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक दूसरा, उद्देशा पहला)

१. अहो भगवन् ! मडाई (प्रासुक भोजन करने वाला) निर्ग्रन्थ, जिसने भव रोका नहीं, भव (संसार) का प्रपंच रोका नहीं, संसार घटाया नहीं, संसार वेदने योग्य कर्म घटाये नहीं, संसार विच्छेद किया नहीं, संसार वेदने योग्य कर्म विच्छेद किये नहीं, प्रयोजन सिद्ध किया नहीं, कार्य पूर्ण किया नहीं, ऐसा मडाई

+ यह अर्थ टीका में है।

(प्रासुकभोजी) निर्ग्रन्थ मरकर क्या मनुष्यभव आदि को प्राप्त करता है ? हां, गौतम ! प्राप्त करता है ।

२. अहो भगवन् ! मडाई निर्ग्रन्थ के जीव को क्या कहना चाहिए ? हे गौतम ! उसको प्राण, भूत, जीव, सत्त्व, विज्ञ, वेद कहना चाहिए । अहो भगवन् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! मडाई निर्ग्रन्थ बाह्य, आभ्यन्तर श्वासोच्छ्वास लेता है, इसलिए वह प्राण कहलाता है । वह भूतकाल में था, वर्तमान काल में है और भविष्य काल में रहेगा इसलिए भूत कहलाता है । वह जीता है, जीवत्व और आयुष्यकर्म का अनुभव करता है, इसलिए जीव कहलाता है । शुभाशुभ कर्मों से संयुक्त है इसलिए सत्त्व कहलाता है । तीखे, कड़वे, कषैले, खट्टे और मीठे रसों को जानता है, इसलिए विज्ञ कहलाता है । सुख-दुःख को भोगता है, इसलिए वेद कहलाता है।

३. अहो भगवन् ! मडाई निर्ग्रन्थ जिसने भव रोक दिया, भवप्रपंच को रोक दिया, संसार घटा दिया, संसार में वेदने योग्य कर्म घटा दिये, संसार विच्छेद कर दिया, संसार में वेदने योग्य कर्म विच्छेद कर दिये, प्रयोजन सिद्ध कर लिया, कार्य पूर्ण कर लिया, ऐसा मडाई निर्ग्रन्थ क्या फिर मनुष्यभव आदि को प्राप्त करता है ? हे गौतम ! ऐसा मडाई निर्ग्रन्थ मनुष्यभव आदि भवों को प्राप्त नहीं करता है ।

४. अहो भगवन् ! ऐसे मडाई निर्ग्रन्थ के जीव को क्या कहना चाहिए ? हे गौतम ! उसे 'सिद्ध' कहना, 'बुद्ध' कहना, 'मुक्त' कहना, 'पारगत' (पार पहुंचा हुआ) कहना, परम्परागत (अनुक्रम से एकपगतिये से दूसरे और दूसरे से तीसरे, इस तरह संसार के पास पहुंचा हुआ) कहना । इस प्रकार उसे सिद्ध, बुद्ध मुक्त, परिनिर्वृत (परिणिव्वुडे), अन्तकृत (अन्तकडे) और सर्व दुःखों से रहित कहना चाहिए ।

१५. खंदक जी का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक दूसरा, उद्देशा पहला)

सावत्थी (श्रावस्ती) नगरी में गर्दभाली परिव्राजक (तापस) का शिष्य स्कन्दक नाम का परिव्राजक रहता था । वह ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद ये चार वेद, पांचवां इतिहास, छठा निघंटु नाम का कोष तथा वेद के छह अंगों + का जानकार, स्वमत के शास्त्रों में प्रवीण, * सारए, वारए, धारए, पारए था । श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का श्रावक पिंगल नाम का नियंठा स्कन्दकजी के पास आया । उसने स्कन्दकजी से प्रश्न पूछे– १. हे स्कन्दक ! क्या लोक अन्त सहित है या अन्त रहित है ! २. जीव अन्त सहित है या अन्त रहित है ? ३. सिद्ध (सिद्धशिला) अन्त सहित है या अन्त

+ शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र (गणितशास्त्र) ।

** सारए-(सारक)– शिष्यों को पढाने वाला। अथवा स्मारक यानी भूले हुए पाठ को याद कराने वाला।*

वारए-(बारक)– यदि कोई शिष्य अशुद्ध पाठ बोलता हो तो उसे रोकने वाला।

धारए-(धारक)–पढ़ी हुई विद्या को सम्यक् प्रकार से धारण करने वाला। अथवा अपने पढ़ाये हुए शिष्यों को सम्यक् प्रकार से संयम में प्रवृत्ति कराने वाला।

पारए-(पारक)– शास्त्रों का पारगामी, शास्त्रों में निपुण ।

रहित है ? ४. सिद्ध भगवान् अन्त सहित हैं या अन्त रहित हैं ? ५. किस मरण से मरता हुआ जीव संसार घटाता है और किस मरण से मरता हुआ जीव संसार बढ़ाता है ?

पिंगल नियंठा ने ये प्रश्न स्कन्दकजी से एक बार, दो बार, तीन बार पूछे, किन्तु स्कन्दकजी कुछ भी जबाव नहीं दे सके, वे मौन रहे । उनके मन में शंका उत्पन्न हुई कि इन प्रश्नों का उत्तर यह है अथवा दूसरा है । उनके मन में कांक्षा उत्पन्न हुई कि मैं इन प्रश्नों का उत्तर कैसे दूं ? मुझे इन प्रश्नों का उत्तर कैसे आवे ? उनके मन में विचिकित्सा उत्पन्न हुई कि मैं जो उत्तर दूं उससे प्रश्न करने वाले को संतोष होगा या नहीं । उनकी बुद्धि में भेद उत्पन्न हुआ कि अब मैं क्या करूं ? उनके मन में क्लेश (खिन्नता) उत्पन्न हुआ कि इस विषय में मैं कुछ भी नहीं जानता हूँ । जब स्कन्दकजी कुछ भी उत्तर नहीं दे सके तब पिंगल नियंठा वहां से चला गया ।

इसके बाद किसी समय श्रावस्ती नगरी में जहां तीन मार्ग, चार मार्ग और बहुत मार्ग बहते हैं, वहां लोग परस्पर बातें करते हैं कि श्रमण भगवान् महावीर स्वामी कयंगला (कृतागंला) नगरी के बाहर छत्रपलाश उद्यान में पधारे हैं । लोग भगवान् को वन्दन करने के लिए जाने लगे । यह बात स्कन्दकजी ने भी सुनी । सुनकर मन में विचार किया कि मैं भगवान् के पास जाकर अपने मन की शंका निकालूं, शंका का समाधान करूं । ऐसा विचार कर अपने स्थान पर गये और तापस संबंधी भण्डोपकरण लेकर भगवान् महावीर स्वामी के पास जाने के लिए रवाना हुए । उस समय

भगवान् महावीर स्वामी ने गौतम स्वामी से कहा कि हे गौतम ! आज तू अपने पूर्वसाथी को देखेगा । तब गौतम स्वामी ने पूछा कि अहो भगवन् ! मैं आज किसको देखूंगा ? भगवान् ने फरमाया कि हे गौतम ! तू स्कन्दक नाम के परिव्राजक को देखेगा । तब गौतम स्वामी ने पूछा कि अहो भगवन् ! वह किस लिए आता है ? हे गौतम ! पिंगल नामक नियंठा ने उससे पांच प्रश्न (लोक अन्त सहित है या अन्त रहित है ? इत्यादि) पूछे । उनका जवाब वह नहीं दे सका। मन में शंका, कांक्षा आदि उत्पन्न हुई । इसलिए उन प्रश्नों का उत्तर पूछने के लिए वह मेरे पास आता है । फिर गौतम स्वामी ने पूछा कि अहो भगवन् ! क्या स्कन्दक आपके पास दीक्षा लेगा ? हां, गौतम ! दीक्षा लेगा । अहो भगवन् स्कन्दक कितनी देर में आवेगा ? हे गौतम ! अभी जल्दी ही आवेगा । इसके बाद थोड़ी ही देर में गौतम स्वामी ने स्कन्दकजी को आते हुए देखा । देखकर गौतम स्वामी उठकर सामने गये और बोले हे स्कन्दकजी ! तुम्हारा आना अच्छा हुआ (स्वागत है) । पिंगल नाम के नियंठा ने तुमसे पांच प्रश्न पूछे, जिनका जवाब तुम नहीं दे सके । उनका जवाब पूछने के लिए भगवान के पास आये हो ? हे स्कन्दकजी ! क्या यह बात सच्ची है ? हां, गौतम ! यह बात सच्ची है । तब स्कन्दकजी ने गौतम स्वामी से पूछा कि हे गौतम ! इस तरह के ज्ञानी पुरुष कौन हैं ? जिन्होंने मेरे मन की गुप्त बात आपको कह दी, जिससे आप मेरे मन की गुप्त बात जानते हैं ? हे स्कन्दकजी ! मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीर स्वामी अरिहन्त हैं, जिन हैं, केवली हैं, तीनों काल की बात को

जानने वाले हैं, सर्वज्ञ हैं, सर्वदर्शी हैं, उन्होंने तुम्हारे मन की गुप्त बात मेरे से कही है, इसलिए मैं जानता हूँ। फिर गौतम स्वामी और स्कन्दकजी श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास आये । भगवान् को देखकर स्कन्दकजी हर्षित हुए, आनन्दित हुए । भगवान् की तीन बार प्रदक्षिणा कर वन्दना नमस्कार कर पर्युपासना करने लगे । तब भगवान् ने स्कन्दकजी से कहा कि हे स्कन्दक ! पिंगल नाम के नियंठा ने तुमसे पांच प्रश्न पूछे, जिनका जवाब तुम नहीं दे सके । उनका जवाब पूछने के लिए मेरे पास आये हो । क्या यह बात सच्ची है ? हाँ, भगवन् ! सच्ची है । (१) हे स्कन्दक ! मैंने लोक चार प्रकार का बतलाया है– द्रव्यलोक, क्षेत्रलोक, काललोक, भावलोक । द्रव्य से लोक एक है, अन्तसहित है । क्षेत्रलोक असंख्यात कोडाकोडी योजन का लम्बा-चौड़ा है, अन्तसहित है । काल से लोक भूतकाल में था, वर्तमानकाल में है और भविष्यकाल में रहेगा । लोक ध्रुव है, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है, अन्तरहित है । भाव से अनन्त वर्ण पर्याय रूप है, अनन्त गन्ध, रस, स्पर्श पर्याय रूप है, अनन्त गुरुलघुपर्याय रूप है, अनन्त अगुरुलघुपर्याय रूप है, अन्त रहित है ।

(२) जीव के चार भेद हैं– द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव । द्रव्य से जीव एक है, अन्तसहित है । क्षेत्र से जीव असंख्यात प्रदेश वाला है, असंख्यात आकाशप्रदेश अवगाहन किये हैं, अन्त सहित है । काल से जीव नित्य है, अन्त रहित है । भाव से जीव के अनन्त ज्ञानपर्याय हैं, अनन्त दर्शनपर्याय हैं, अनन्त चारित्रपर्याय हैं,

अनन्त अगुरुलघुपर्याय हैं, अन्तरहित है ।

(३) सिद्धि (सिद्धशिला) के ४ भेद हैं– द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव । द्रव्य से सिद्धि एक है, अन्तसहित है । क्षेत्र से सिद्धि ४५ लाख योजन की लम्बी-चौड़ी है, १, ४२, ३०, २४९ योजन झाझेरी परिधि है, अन्तसहित है । काल से सिद्धि नित्य है, अन्तरहित है । भाव से सिद्धि अनन्त वर्ण पर्याय वाली है, अनन्त अनन्त गन्ध, रस, स्पर्श पर्याय वाली है। अनन्त गुरुलघु पर्याय रूप है, अनन्त अगुरुलघुपर्याय रूप है, अन्तरहित है (द्रव्यसिद्धि क्षेत्रसिद्धि अन्त वाली है और कालसिद्धि और भावसिद्धि अन्तरहित है), सिद्धि अन्तसहित भी है और अन्तरहित भी है ।

(४) सिद्ध के ४ भेद हैं– द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव । द्रव्य से सिद्ध एक है, अन्तसहित है । क्षेत्र से सिद्ध असंख्यात प्रदेश वाले हैं, असंख्यात आकाशप्रदेश अवगाहन किये हैं, अन्तसहित हैं । काल से सिद्ध आदि-सहित हैं, अन्तरहित हैं । भाव से सिद्ध अनन्त ज्ञानपर्याय, अनन्त दर्शनपर्याय, अनन्त चारित्रपर्याय वाले हैं यावत् अनन्त अगुरुलघुपर्याय वाले हैं, अन्तरहित हैं ।

(५) अहो भगवन् ! कौन से मरण से मरता हुआ जीव संसार बढ़ाता है और कौन से मरण से मरता हुआ जीव संसार घटता है ? हे स्कन्दक ! मरण दो प्रकार का है– बालमरण, पण्डितमरण । बालमरण के १२ भेद हैं– १ बलन्मरण-व्रत से भृष्ट होकर तड़फता हुआ मरे । २ वसट्टमरण (वशार्त्तमरण) पतंगे की तरह इन्द्रियों के वशीभूत होकर मरे । ३ अन्तोसल्लमरण (अन्तः शल्यमरण) लगे हुए दोषों की आलोचलना किये विना मरे ।

४ तद्भवमरण– जिस गति से मरे वापिस उसी गति में उत्पन्न होने की चिन्तवना करता हुआ मरे, जैसे मनुष्यगति से मर कर वापिस मनुष्यगति में उत्पन्न होने की चिन्तवना करता हुआ मरे । ५ गिरिपतनमरण– पर्वत से पड़ कर मरे । ६ जलप्रवेशमरण–पानी में डूब कर मरे । ८ ज्वलनप्रवेशमरण–अग्नि में जल कर मरे । ९ विषभक्षणमरण– जहर खाकर मरे । १० सत्थोवाडण (शस्त्रावपाटन) मरण– शस्त्र से मरे । ११ वेहानसमरण- गले में फांसी लगाकर मरे । १२ गिद्धपिट्ठ (गृध्रपृष्ठ) मरण– मरे हुए जानवर के कलेवर में प्रवेश कर के मरे । इन बारह प्रकार के बालमरण से मरता हुआ जीव नारकी के अनन्त भव बढ़ाता है, तिर्यंच के अनन्त भव बढ़ाता है, मनुष्य के अनन्त भव बढ़ाता है, देवता के अनन्त भव बढ़ाता है, वह अनन्त काल तक संसार में परिभ्रमण करता है ।

पण्डितमरण के दो भेद हैं – पाओवगमण- पादपोपगमन (वृक्ष की तरह स्थिर रह कर मरना) और भक्तप्रत्याख्यान (भोजन पानी का त्याग करके मरना)। इन दोनों के दो दो भेद हैं – + निहारी और अनिहारी । पण्डितमरण से मरता हुआ जीव नारकी के अनन्त भव घटाता है , यावत् भवभ्रमण घटाता है, अल्प संसारी होता है ।

+ निहारी– जो संथारा ग्राम, नगर, बस्ती में किया जाए, जिससे मृतकलेवर को बाहर ले जाकर अग्निदाहादि संस्कार करना पड़े, उसे निहारी कहते हैं।

अनिहारी– जो संथारा ग्राम, नगर, बस्ती से बाहर जंगल आदि एकान्त स्थान में किया जाय, जिससे मृतकलेवर को बाहर ले जाने की आवश्यकता न रहे, उसे अनिहारी कहते हैं।

भगवान् के उपरोक्त वचनों को सुनकर स्कन्दकजी ने भगवान् के पास संयम ग्रहण किया । फिर भिक्षु की १२ पडिमा धारण कीं, गुणरत्नसंवत्सर तप किया और भी अनेक प्रकार की तपस्या करके एक मास का संथारा किया । यहां का आयुष्य पूर्ण कर बारहवें देवलोक में उत्पन्न हुए । वहां से चव कर महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होवेंगे यावत् सर्व दुःखों का अन्त कर मोक्ष जावेंगे ।

१६. पंचास्तिकाय का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक दूसरा, उद्देशा दसवां)

अहो भगवन् ! अस्तिकाय के कितने भेद हैं ? हे गौतम ! अस्तिकाय के ५ भेद हैं– धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्‌गलास्तिकाय ।

१. अहो भगवन् ! धर्मास्तिकाय में कितने वर्ण, कितने गन्ध, कितने रस और कितने स्पर्श पाये जाते हैं ? हे गौतम ! धर्मास्तिकाय में वर्ण नहीं, गन्ध नहीं, रस नहीं, स्पर्श नहीं, अरूपी शाश्वत, अवस्थित लोक द्रव्य है। धर्मास्तिकाय के ५ भेद हैं– द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, गुण । द्रव्य से धर्मास्तिकाय एक द्रव्य है । क्षेत्र से लोकप्रमाण है । काल से आदि-अन्तरहित है । भाव से अरूपी, वर्ण नहीं, गन्ध नहीं, रस नहीं, स्पर्श नहीं । गुण से चलण (गति) गुण वाला है, पानी में मछली दृष्टांत ।

२. अहो भगवन् ! अधर्मास्तिकाय में कितने वर्ण, कितने

गन्ध, कितने रस और कितने स्पर्श पाये जाते हैं ? हे गौतम ! अधर्मास्तिकाय में वर्ण नहीं, गन्ध नहीं, रस नहीं, स्पर्श नहीं, अरूपी, अजीव, शाश्वत, अवस्थित लोकद्रव्य है । अधर्मास्तिकाय के पांच भेद हैं– द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, गुण । द्रव्य से अधर्मास्तिकाय एक द्रव्य है। क्षेत्र से लोकप्रमाण है । काल से आदि-अन्तरहित है । भाव से अरूपी है, वर्ण नहीं, गन्ध नहीं, रस नहीं, स्पर्श नहीं । गुण से स्थिर गुण है, थके हुए पथिक को छाया का दृष्टांत ।

३. अहो भगवन् ! आकाशास्तिकाय में कितने वर्ण, कितने गन्ध, कितने रस और कितने स्पर्श पाये जाते हैं ? हे गौतम ! वर्ण नहीं, गन्ध नही, रस नहीं, स्पर्श नहीं, अरूपी अजीव, शाश्वत, अवस्थित लोकालोक द्रव्य । इसके ५ भेद हैं– द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, गुण । द्रव्य से एक द्रव्य । क्षेत्र से लोकालोक प्रमाण । काल से आदि-अन्तरहित । भाव से अरूपी, वर्ण नहीं, गन्ध नहीं, रस नहीं, स्पर्श नहीं । गुण से अवगाहन गुण, भींत में खूंटी का दृष्टांत, दूध में पतासे का दृष्टांत, आकाश में विकास का गुण ।

४. अहो भगवन् ! जीवास्तिकाय में कितने वर्ण, कितने गन्ध, कितने रस और कितने स्पर्श पाये जाते हैं । हे गौतम ! वर्ण नहीं, गन्ध नहीं, रस नहीं, अरूपी, जीव, शाश्वत, अवस्थित लोकद्रव्य । इसके ५ भेद हैं– द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, गुण । द्रव्य से अनन्त जीव द्रव्य । क्षेत्र से लोकप्रमाण । काल से आदि-अन्तरहित । भाव से अरूपी, वर्ण नहीं, गन्ध नहीं, रस नहीं, स्पर्श नहीं । गुण से उपयोग गुण, चेतनालक्षण, चन्द्रमा की कला का दृष्टांत ।

५. अहो भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय में कितने वर्ण, कितने गन्ध, कितने रस और कितने स्पर्श पाये जाते हैं ? हे गौतम ! पुद्गलास्तिकाय में पांच वर्ण, दो गन्ध, पांच रस, आठ स्पर्श पाये जाते हैं । रूपी, अजीव, शाश्वत, अवस्थित लोकद्रव्य । इसके ५ भेद हैं– द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, गुण । द्रव्य से अनन्त पुद्गलद्रव्य, क्षेत्र से लोकप्रमाण । काल से आदि-अन्तरहित । भाव से रूपी, वर्ण है, गन्ध है, रस है, स्पर्श है । गुण से पूरण-गलन गुण, मिले बिखरे गले, बादलों का दृष्टांत ।

६. अहो भगवन् ! क्या धर्मास्तिकाय के एक प्रदेश को धर्मास्तिकाय कहना । २ प्रदेश, ३ प्रदेश यावत् १० प्रदेश, संख्यात प्रदेश, असंख्यात प्रदेशों में एक प्रदेश कम हो, उनको धर्मास्तिकाय कहना ? हे गौतम ! णो इणट्ठे समट्ठे (उनको धर्मास्तिकाय नहीं कहना) । अहो भगवन् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! क्या खांडे चक्र को चक्र कहना कि पूरे चक्र को चक्र कहना । इसी छत्र, चमर, वस्त्र, दण्ड, शस्त्र, मोदक (लाडू) के लिये कह देना । धर्मास्तिकाय के पूरे प्रदेश हों तो धर्मास्तिकाय कहना । जिस तरह धर्मास्तिकाय का कहा उसी तरह ७ (सातवां द्वार) अधर्मास्तिकाय का कह देना । धर्मास्तिकाय की तरह ही (आठवां द्वार) आकाशास्तिकाय का कह देना, किन्तु इतनी विशेषता है कि आकाशास्तिकाय के अनन्त प्रदेश होते हैं, उनमें से एक भी प्रदेश कम हो उसको आकाशास्तिकाय नहीं कहना । जिस तरह आकाशास्तिकाय का कहा उसी तरह (नववां द्वार) जीवास्तिकाय और १० (दसवां द्वार) पुद्गलास्तिकाय का कह देना ।

११. अहो भगवन् ! जीव अपना जीवपना कैसे बतलाता है ? हे गौतम ! जीव उत्थान-कर्म-बल-वीर्य-पुरुषाकारपराक्रम सहित है । मतिज्ञान के अनन्त पर्याय, श्रुतज्ञान के अनन्त पर्याय, अवधिज्ञान के अनन्त पर्याय, मनःपर्यायज्ञान के अनन्त पर्याय, केवलज्ञान के अनन्त पर्याय, मति-अज्ञान के अनन्त पर्याय, श्रुत-अज्ञान के अनन्त पर्याय, विभंगज्ञान के अनन्त पर्याय, चक्षुदर्शन के अनन्त पर्याय, अचक्षुदर्शन के अनन्त पर्याय, अवधिदर्शन के अनन्त पर्याय और केवलदर्शन के अनन्त पर्याय हैं, उनके उपयोग को धारण करता है, उपयोग लक्षण वाला है । इन कारणों से उत्थान-कर्म-बल-वीर्य-पुरुषाकारपराक्रम द्वार जीव अपना जीवपना बतलाता है ।

१२. अहो भगवन् ! आकाशास्तिकाय के कितने भेद हैं ? हे गौतम ! दो भेद हैं- लोकाकाश और अलोकाकाश । अहो भगवन् ! क्या लोकाकाश में जीव हैं कि जीव के देश हैं कि जीव के प्रदेश हैं, अजीव है कि अजीव के देश हैं कि अजीव के प्रदेश हैं ? हे गौतम ! जीव हैं, जीव के देश भी हैं, जीव के प्रदेश भी हैं, अजीव है, अजीव के देश भी हैं, अजीव के प्रदेश भी हैं । अहो भगवन् ! लोकाकाश में जीव हैं तो क्या एकेन्द्रिय हैं कि द्वीन्द्रिय हैं कि त्रीन्द्रिय हैं कि चतुरिन्द्रिय हैं कि पंचेन्द्रिय हैं कि अनिन्द्रिय हैं ? हे गौतम ! नियमा एकेन्द्रिय भी हैं , द्वीन्द्रिय भी हैं, त्रीन्द्रिय भी हैं , चतुरिन्द्रिय भी हैं, पंचेन्द्रिय भी हैं और अनिन्द्रिय भी हैं, इन छहों के देश भी हैं और प्रदेश भी हैं । अहो भगवन् ! लोकाकाश में अजीव है तो क्या रूपी है कि अरूपी है ? हे गौतम ! रूपी भी है,

अरूपी भी है । रूपी के चार भेद – खंध, देश, प्रदेश, परमाणुपुद्गल । अरूपी के पांच भेद– धर्मास्तिकाय का खंध है, देश नहीं, प्रदेश है । अधर्मास्तिकाय का खंध है, देश नहीं, प्रदेश है । अद्धासमय (काल) । अहो भगवन् ! क्या अलोकाकाश में जीव है कि जीव के देश हैं, जीव के प्रदेश हैं, अजीव है कि अजीव के देश हैं कि अजीव के प्रदेश हैं ? हे गौतम ! जीव नहीं, जीव के देश नहीं, जीव के प्रदेश नहीं । अजीव नहीं है, अजीव के देश नहीं हैं, अजीव के प्रदेश नहीं हैं । एक अजीव द्रव्य का देश है, वह अगुरुलघु है, अनन्त अगुरुलघुगुण से संयुक्त है, सर्व आकाश के अनन्तवां भाग ऊणा (कम) है ।

१३. अहो भगवन् ! धर्मास्तिकाय कितना बड़ा है ? हे गौतम ! लोकरूप, लोकमात्र, लोकप्रमाण, लोकस्पर्शी है और लोक को स्पर्श कर रहा हुआ है । जिस तरह धर्मास्तिकाय का कहा, उसी तरह १४ (चौदहवां द्वार) अधर्मास्तिकाय, १५ (पन्द्रहवां द्वार) लोकाकाश, १६ (सोलहवां द्वार) जीवास्तिकाय, १७ (सतरहवां द्वार) पुद्गलास्तिकाय का कह देना ।

अहो भगवन् ! धर्मास्तिकाय अधोलोक कितना स्पर्शा है ? हे गौतम ! आधा झाझेरा (सात राजु से कुछ अधिक) । अहो भगवन् ! धर्मास्तिकाय ऊर्ध्वलोक कितना स्पर्शा है ? हे गौतम ! आधा मठेरा (सात राजु से कुछ कम) । अहो भगवन् ! धर्मास्तिकाय तिर्च्छालोक कितना स्पर्शा है ? हे गौतम ! धर्मास्तिकाय के असंख्यातवें भाग स्पर्शा है । अहो भगवन् ! ७ पृथ्वी, ७ घनोदधि, ७ घनवाय, ७ तनुवाय ने धर्मास्तिकाय को कितना स्पर्शा है ? हे गौतम ! धर्मास्तिकाय के असंख्यातवें भाग

११. अहो भगवन् ! जीव अपना जीवपना कैसे बतलाता है ? हे गौतम ! जीव उत्थान-कर्म-बल-वीर्य-पुरुषाकारपराक्रम सहित है । मतिज्ञान के अनन्त पर्याय, श्रुतज्ञान के अनन्त पर्याय, अवधिज्ञान के अनन्त पर्याय, मन:पर्यायज्ञान के अनन्त पर्याय, केवलज्ञान के अनन्त पर्याय, मति-अज्ञान के अनन्त पर्याय, श्रुत-अज्ञान के अनन्त पर्याय, विभंगज्ञान के अनन्त पर्याय, चक्षुदर्शन के अनन्त पर्याय, अचक्षुदर्शन के अनन्त पर्याय, अवधिदर्शन के अनन्त पर्याय और केवलदर्शन के अनन्त पर्याय हैं, उनके उपयोग को धारण करता है, उपयोग लक्षण वाला है । इन कारणों से उत्थान-कर्म-बल-वीर्य-पुरुषाकारपराक्रम द्वार जीव अपना जीवपना बतलाता है ।

१२. अहो भगवन् ! आकाशास्तिकाय के कितने भेद हैं ? हे गौतम ! दो भेद हैं– लोकाकाश और अलोकाकाश । अहो भगवन् ! क्या लोकाकाश में जीव हैं कि जीव के देश हैं कि जीव के प्रदेश हैं, अजीव है कि अजीव के देश हैं कि अजीव के प्रदेश हैं ? हे गौतम ! जीव हैं, जीव के देश भी हैं, जीव के प्रदेश भी हैं, अजीव है, अजीव के देश भी हैं, अजीव के प्रदेश भी हैं । अहो भगवन् ! लोकाकाश में जीव हैं तो क्या एकेन्द्रिय हैं कि द्वीन्द्रिय हैं कि त्रीन्द्रिय हैं कि चतुरिन्द्रिय हैं कि पंचेन्द्रिय हैं कि अनिन्द्रिय हैं ? हे गौतम ! नियमा एकेन्द्रिय भी हैं , द्वीन्द्रिय भी हैं, त्रीन्द्रिय भी हैं , चतुरिन्द्रिय भी हैं, पंचेन्द्रिय भी हैं और अनिन्द्रिय भी हैं, इन छहों के देश भी हैं और प्रदेश भी हैं । अहो भगवन् ! लोकाकाश में अजीव है तो क्या रूपी है कि अरूपी है ? हे गौतम ! रूपी भी है,

अरूपी भी है । रूपी के चार भेद – खंध, देश, प्रदेश, परमाणुपुद्गल । अरूपी के पांच भेद– धर्मास्तिकाय का खंध है, देश नहीं, प्रदेश है । अधर्मास्तिकाय का खंध है, देश नहीं, प्रदेश है । अद्धासमय (काल) । अहो भगवन् ! क्या अलोकाकाश में जीव है कि जीव के देश हैं, जीव के प्रदेश हैं, अजीव है कि अजीव के देश हैं कि अजीव के प्रदेश हैं ? हे गौतम ! जीव नहीं, जीव के देश नहीं, जीव के प्रदेश नहीं । अजीव नहीं है, अजीव के देश नहीं हैं, अजीव के प्रदेश नहीं हैं । एक अजीव द्रव्य का देश है, वह अगुरुलघु है, अनन्त अगुरुलघुगुण से संयुक्त है, सर्व आकाश के अनन्तवां भाग ऊणा (कम) है ।

१३. अहो भगवन् ! धर्मास्तिकाय कितना बड़ा है ? हे गौतम ! लोकरूप, लोकमात्र, लोकप्रमाण, लोकस्पर्शी है और लोक को स्पर्श कर रहा हुआ है । जिस तरह धर्मास्तिकाय का कहा, उसी तरह १४ (चौदहवां द्वार) अधर्मास्तिकाय, १५ (पन्द्रहवां द्वार) लोकाकाश, १६(सोलहवां द्वार) जीवास्तिकाय, १७ (सतरहवां द्वार) पुद्गलास्तिकाय का कह देना ।

अहो भगवन् ! धर्मास्तिकाय अधोलोक कितना स्पर्शा है ? हे गौतम ! आधा झाझेरा (सात राजु से कुछ अधिक) । अहो भगवन् ! धर्मास्तिकाय ऊर्ध्वलोक कितना स्पर्शा है ? हे गौतम ! आधा मठेरा (सात राजु से कुछ कम) । अहो भगवन् ! धर्मास्तिकाय तिर्च्छालोक कितना स्पर्शा है ? हे गौतम ! धर्मास्तिकाय के असंख्यातवें भाग स्पर्शा है । अहो भगवन् ! ७ पृथ्वी, ७ घनोदधि, ७ घनवाय, ७ तनुवाय ने धर्मास्तिकाय को कितना स्पर्शा है ? हे गौतम ! धर्मास्तिकाय के असंख्यातवें भाग

को स्पर्शा है । अहो भगवन् ! सात नारकी के सात आकाशान्तरों ने धर्मास्तिकाय को कितना स्पर्शा है ? हे गौतम ! धर्मास्तिकाय के संख्यातवें भाग को स्पर्शा है । अहो भगवन् ! जम्बूद्वीप आदि असंख्यात द्वीप, लवणसमुद्र आदि असंख्यात समुद्रों ने धर्मास्तिकाय को कितना स्पर्शा है ? हे गौतम ! धर्मास्तिकाय के असंख्यातवें भाग को स्पर्शा है । अहो भगवन् ! १२ देवलोक, ९ ग्रैवेयक, ५ अनुत्तर विमान, इसिपब्भारा पृथ्वी (सिद्धशिलाा) धर्मास्तिकाय को कितना स्पर्शा है ? हे गौतम ! धर्मास्तिकाय के असंख्यातवें भाग को स्पर्शा है ।

जिस तरह धर्मास्तिकाय से * ६७ बोल कहे, उसी तरह अधर्मास्तिकाय से ६७ बोल और लोकाकाश से ६७ बोल कह देना चाहिए । ये ६७ + ६७ + ६७ = २०१ और १७ समुच्चय के, सब मिल कर २१८ बोल हुए।

१७. कंखामोहनीय वेदने के १३ कारणों का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक पहला, उद्देशा तीसरा)

अहो भगवन् ! क्या श्रमण निर्ग्रन्थ कंखामोहनीय कर्म

---

* १ अधोलोक, २ ऊर्ध्वलोक, ३ तिर्च्छालोक ये ३ लोक के ३ बोल, ७ पृथ्वी, ७ घनोदधि, ७ घनवायु, ७ तनुवायु, ७ नारकी के आकाश आंतरे, १ द्वीप का, १ समुद्र का, १२ देवलोक का, ९ ग्रैवेयक, ५ अनुत्तर विमान, १ सिद्धशिला, ये सब मिलाकर ६७ बोल हुए।

वेदते हैं ? हां गौतम ! वेदते हैं । अहो भगवन् ! इसका क्या कारण है ? हे गौतम ! १३ कारण हैं –

१. नाणंतरेहिं (ज्ञानान्तर से) – एक ज्ञान से दूसरे ज्ञान के विषय में शंका उत्पन्न होती है, जैसे– अवधिज्ञानी १४ राजु लोक के परमाणु आदि सब रूपी द्रव्यों का जानता है और मन:पर्ययज्ञानी अढाई द्वीप में संज्ञी जीव के मन की बात को जानता है । अवधिज्ञान तीसरा ज्ञान है, वह ज्यादा जानता है और मन:पर्यय ज्ञान चौथा ज्ञान है, वह कम क्यों जानता है ? ऐसी शंका उत्पन्न होती है ।

इसका उत्तर– अवधिज्ञान के साथ में अवधिदर्शन की सहायता है, इसलिए ज्यादा जानता देखता है । मन:पर्ययज्ञान के साथ में दर्शन की सहायता नहीं, इसलिए कम जानता देखता है ।

२. दंसणंतरेहिं (दर्शनान्तर से)– सामान्य ज्ञान को दर्शन कहते हैं । चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन अलग क्यों कहा गया ?

इसका उत्तर– अचक्षुदर्शन सामान्य रूप से देखता है, चक्षुदर्शन विशेष रूप से देखता है ।

अथवा समकित के विषय में शंका उत्पन्न होती है, जैसे– उपशम समकित और क्षायोपशमिक समकित अलग-अलग क्यों कही गई ? उत्तर– क्षायोपशमिक समकित में विपाक का उपशम है और मिथ्यात्व के प्रदेशों का उदय है । उपशमसमकित में मिथ्यात्व के प्रदेशों का उदय नहीं है ।

३. चरित्तंतरेहिं (चरित्रान्तर से) – चारित्र के विषय में शंका उत्पन्न होती है, जैसे– सामायिकचारित्र में सर्व सावद्य का

त्याग हो गया फिर छेदोपस्थापनीय चारित्र देने की क्या आवश्यकता है ? उत्तर– प्रथम तीर्थंकर के साधु ऋजु-जड़ (ऊपर से जड़ यानी मन्दबुद्धि होते हैं किन्तु भीतर से उनका हृदय सरल होता है) होते हैं और अन्तिम तीर्थंकर के साधु वक्र-जड़ (ऊपर से जड़ यानी मन्दबुद्धि और भीतर हृदय में छल-कपट वाले) होते हैं । इसलिए प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के साधुओं को समझाने के लिए छेदोपस्थापनीयचारित्र दिया जाता है । बीच के २२ तीर्थंकरों के साधु ऋजु-प्राज्ञ (प्राज्ञ यानी ऊपर से तीक्ष्ण बुद्धि वाले और ऋजु यानी भीतर से सरलहृदय वाले) होते हैं । इसलिए उनके लिए सामायिकचारित्र ही कहा गया है ।

४. लिंगंतरेहिं (लिंगान्तर से) – प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के साधु सिर्फ सफेद वस्त्र रखते हैं और बीच के २२ तीर्थंकरों के साधु पांच ही वर्ण के वस्त्र रखते हैं ? यह भेद क्यों ?

उत्तर– प्रथम तीर्थंकर के साधु ऋजु-जड़ और अन्तिम तीर्थंकर के साधु वक्र-जड़ होते हैं, इसलिए उनके लिए सिर्फ सफेद वस्त्र रखने की ही आज्ञा है । बीच के २२ तीर्थंकरों के साधु ऋजु-प्राज्ञ होते हैं, इसलिए वे पांचों रंग के वस्त्र रख सकते हैं ।

५. पवयणंतरेहिं (प्रवचनान्तर से)– एक तीर्थंकर के प्रवचन से दूसरे तीर्थंकर के प्रवचन में अन्तर पड़ने से शंका उत्पन्न होती है, जैसे– प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के समय में पांच महाव्रत और छठा रात्रिभोजनविरमणव्रत बतलाया गया है और बीच के २२ तीर्थंकरों के समय में चार महाव्रत और पांचवा रात्रिभोजनविरमणव्रत बतलाया गया है, ऐसा क्यों ? ऐसी शंका

उत्पन्न होवे उसका उत्तर– तीसरे प्रश्न के उत्तर के समान है । चौथे महाव्रत का पांचवें महाव्रत में समावेश किया गया है, क्योंकि स्त्री परिग्रह रूप ही है । इस कारण से बीच के २२ तीर्थंकरों के समय चार महाव्रत कहे गये हैं । अलग-अलग विचार करने से पांच महाव्रत हो जाते हैं ।

६. पावयणंतरेहिं (प्रावचनिकान्तर से)– प्रावचनिक अर्थात् बहुश्रुत पुरुष । एक प्रावचनिक इस तरह की प्रवृत्ति करता है और दूसरा प्रावचनिक दूसरी तरह की प्रवृत्ति करता है। इन दोनों में कौन सी ठीक है ? ऐसी शंका उत्पन्न हो, उसका उत्तर यह है कि चारित्रमोहनीय का क्षयोपशम भिन्न-भिन्न होने से तथा उत्सर्ग, अपवाद मार्ग होने से प्रवृत्ति में अन्तर पड़ जाती है किन्तु वही प्रवृत्ति प्रमाण रूप है, जो आगम से अविरुद्ध है।

७. कप्पंतरेहिं (कल्पान्तर से)– एक कल्प से दूसरे कल्प में अन्तर होने से शंका उत्पन्न होवे, जैसे कि जिनकल्पी साधु नग्न रहते हैं और महाकष्टकारी क्रिया करते हैं , स्थविरकल्पी वस्त्र पात्र रखते हैं और अल्प कष्ट वाली क्रिया करते हैं तो यह अल्प कष्टकारी क्रिया कर्मक्षय में कैसे कारण हो सकती है ?

उत्तर– जिनकल्प और स्थविरकल्प दोनों ही भगवान् की आज्ञा में हैं और दोनों कर्मक्षय के कारण हैं ।

८. मग्गंत्तरेहिं (मार्गान्तर से)– कोई आचार्य दो नमोत्थुणं देते हैं और कोई आचार्य तीन नमोत्थुणं देते हैं । कोई आचार्य अधिक कायोत्सर्ग करते हैं और कोई कम करते हैं । इनमें कौनसा मार्ग ठीक है ? ऐसी शंका होवे, उसका उत्तर– गीतार्थ जिस समाचारी में प्रवृत्ति करता है, यदि वह निषिद्ध नहीं है और

निष्पाप है तो प्रमाणयुक्त है ।

९. मयंतरेहिं (मतान्तर से)– एक दूसरे आचार्य के मत में अन्तर पड़ने से शंका उत्पन्न होती है, जैसे कि– आचार्य सिद्धसेन दिवाकर केवलज्ञान और केवलदर्शन को एक साथ मानते हैं और आचार्य जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण केवलज्ञान और केवलदर्शन को एक साथ नहीं मानते, किन्तु भिन्न-भिन्न समय में मानते हैं । अब शंका होती है कि इन दोनों मतों मे कौनसा मत सच्चा है ? उत्तर– जो मत आगम के अनुसार है, वही सत्य है । पन्नवणाजी के पद ३० में इस तरह कहा है– जिस समय जानता है उस समय नहीं देखता, जिस समय देखता है उस समय नहीं जानता ।

१०. भंगंतरेहिं (भगांतर से)– हिंसा संबंधी ४ भांगे होते हैं –

१ द्रव्य से हिंसा, भाव से नहीं ।

२ भाव से हिंसा, द्रव्य से नहीं ।

३ द्रव्य से भी नहीं, भाव से भी नहीं ।

४ द्रव्य से भी हिंसा, भाव से भी हिंसा ।

इन भांगों में से कोई आचार्य द्विभंगी, कोई त्रिभंगी और कोई चौभंगी मानते हैं । इनमें शंका उत्पन्न होवे, उसका उत्तर– ईर्यासमिति से यतनापूर्वक चलते हुए साधु के पैर नीचे कोई कीड़ी आदि जीव मर जाय तो द्रव्यहिंसा है । बिना उपयोग से चले तो भावहिंसा है ।

११. णयंतरेहिं (नयान्तर से)– एक ही वस्तु में नित्य और अनित्य ये दो विरोधी धर्म कैसे रह सकते हैं ? इसका उत्तर– द्रव्यार्थिकनय की अपेक्षा से वस्तु नित्य है और पर्यायार्थिकनय की

अपेक्षा से वस्तु अनित्य है । भिन्न-भिन्न अपेक्षा से एक ही वस्तु में भिन्न-भिन्न धर्म रह सकते हैं । जैसे– एक ही पुरुष अपने पिता की अपेक्षा से पुत्र है और अपने पुत्र की अपेक्षा से वह पिता है ।

१२. णियमंतरेहिं (नियमान्तर से)– जैसे कोई साधु अभिग्रह करता है, नवकारसी, पौरिसी आदि पच्चक्खाण करता है । इसमें शंका उत्पन्न होवे कि साधु के तो सर्व सावद्य का त्याग है, फिर उसे अभिग्रह नवकारसी पौरिसी आदि करने की क्या आवश्यकता है ? इसका उत्तर– साधु विशेष प्रमाद को टालने के लिए अभिग्रह आदि करते हैं ।

१३. पमाणंतरेहिं (प्रमाणान्तर से)– शास्त्र में कहा है कि सूर्य समभूमिभाग से आठ सौ योजन ऊपर चलता है । हमारे चक्षु, प्रत्यक्ष से प्रतिदिन सूर्य भूमि से निकलता हुआ दिखाई देता है, इनमें कौन सच्चा है ? इसका उत्तर– हमारे चक्षुप्रत्यक्ष से सूर्य पृथ्वी से निकलता हुआ दिखाई देता है यह चक्षुप्रत्यक्ष सत्य नहीं है, क्योंकि सूर्य पृथ्वी से बहुत दूर है, इसलिए हमारा चक्षुभ्रम है । शास्त्र में जो कहा है वह सत्य है ।

१८. अस्ति-नास्ति का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक पहला, उद्देशा तीसरा)

१. अहो भगवन् ! क्या * अस्ति पदार्थ अस्तिपणे परिणमता

** जो पदार्थ जिस रूप से है, उसका उसी रूप में रहना 'अस्तिपना' है और पररूप से न रहना नास्तिपना है । प्रत्येक वस्तु अपने अपने रूप से सत् (विद्यमान) है और पररूप से असत् (अविद्यमान) है ।*

है और नास्ति पदार्थ नास्तिपणे परिणमता है ? हां, गौतम ! अस्ति पदार्थ अस्तिपणे परिणमता है और नास्ति पदार्थ नास्तिपणे परिणमता है ।

२. अहो भगवन् ! जो अस्ति पदार्थ अस्तिपणे परिणमता है और नास्ति पदार्थ नास्तिपणे परिणमता है तो क्या प्रयोगसा (प्रयोग से) परिणमता है या विस्रसा (स्वाभाविक रूप से) परिणमता है ? हे गौतम ! प्रयोगसा भी परिणमता है और विस्रसा भी परिणमता है । इसी तरह गमणिज्ज (गमनीय) के भी दो आलापक कह देने चाहिए ।

१९. मोहनीयकर्म का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक पहला, उद्देशा चौथा)

कइ पयडी कह बंधइ, कइहिं च ठाणेहिं बंधइ पयडी ।
कइ वेएइ पयडी, अणुभागो कइविहो कस्स । ।

१. अहो भगवन् ! कर्म कितने हैं ? हे गौतम ! कर्म ८ हैं– ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयुष्य, नाम, गोत्र, अन्तराय * ।

जैसे मनुष्य मनुष्य रूप से सर्वकाल में सत् है और मनुष्य अश्व (घोड़े) रूप से सर्वकाल में असत् है। जैसे घट (घड़ा) घट रूप से सत् है किन्तु घट, पट (कपड़ा) रूप से असत् है।

** आठ कर्मों का विस्तृत वर्णन श्री पन्नवणासूत्र के थोकड़ा भाग तीसरा, प्रथमावृत्ति में तेईसवें कर्मप्रकृत्ति पद में पहले उद्देशा पृष्ठ ३३ से ४२ तक में कहा गया है। तीसरे भाग में द्वितीयावृत्ति में पृष्ठ ५३ से ६४ में है ।*

२. अहो भगवन् ! क्या जीव मोहनीय कर्म के उदय से उवट्ठाणे (उपस्थान–चारगति में परिभ्रमण करने की क्रिया) करता है ? हां, गौतम ! करता है ।

३. अहो भगवन् ! वीर्य से उपस्थान (चार गति में परिभ्रमण करने की क्रिया) करता है या अवीर्य से करता है ? हे गौतम ! वीर्य से करता है, अवीर्य से नहीं करता है ।

४. अहो भगवन् ! वीर्य के कितने भेद हैं ? हे गौतम ! वीर्य के तीन भेद हैं– बालवीर्य, पण्डितवीर्य, बालपण्डितवीर्य ।

५. अहो भगवन् ! किस वीर्य से उपस्थान करता है ? हे गौतम ! बालवीर्य से उपस्थान करता है, पण्डितवीर्य से और बालपण्डितवीर्य से उपस्थान नहीं करता है ।

६. अहो भगवन् ! क्या मिथ्यात्वमोहनीयकर्म के उदय से जीव अपक्रमण करता है (ऊंचे गुणस्थान से नीचे गुणस्थान में आता है) ? हां, गौतम ! करता है ।

७. अहो भगवन् ! कौनसे वीर्य से अपक्रमण करता है ? हे गौतम ! बालवीर्य से अपक्रमण करता है, + कदाचित् बालपण्डितवीर्य से भी अपक्रमण करता है किन्तु पण्डितवीर्य से अपक्रमण नहीं करता, क्योंकि पण्डितवीर्य से जीव नीचे गुणस्थान से ऊंचे गुणस्थान में जाता है किन्तु ऊंचे गुणस्थान से नीचे गुणस्थान में नहीं

+ वाचनान्तर में कहा है कि बालवीर्य से अपक्रमण करता है, पण्डितवीर्य से और बालपण्डितवीर्य से अपक्रमण नहीं करता है।

आता * ।

जिस तरह मोहनीय कर्म के उदय से दो आलापक (उपस्थान और अपक्रमण) कहे हैं, उसी तरह उपशान्तमोहनीयकर्म के भी दो आलापक कह देने चाहिए, किन्तु उपशांतमोहनीयकर्म में पण्डितवीर्य से उपस्थान करता है और बालपण्डितवीर्य से अपक्रमण

** (१) जब दर्शनमोहनीय (मिथ्यात्वमोहनीय) कर्म का उदय होता है तब जीव बालवीर्य द्वारा उवट्ठाण करता है अर्थात् बालवीर्य के प्रयोग द्वारा जीव संसार-परिभ्रमण की क्रिया करता है। आशय यह है कि मिथ्यादृष्टि जीव बालवीर्य द्वारा मिथ्यात्व को ही पुष्ट करता है। पण्डितवीर्य द्वारा और बालपण्डितवीर्य द्वारा जीव उवट्ठाण (परलोक की क्रिया, संसार- परिभ्रमण की क्रिया) नहीं करता है। (२) जब जीव के मिथ्यामोहनीय का उदय होता है तब बालवीर्य द्वारा अपक्रमण करता है अर्थात् ऊपर के उत्तम गुणस्थानों से गिर कर नीचे गुणस्थानों में आता है अर्थात् सर्वविरति संयम से, देशविरति से और समकित से गिरकर मिथ्यात्व में आता है ।*

प्रश्न– उदय की अपेक्षा उवट्ठाएज्जा और अवक्कमेज्जा में क्या अन्तर है ?

उत्तर– जो जीव मिथ्यात्व में रहे हुए हैं और मिथ्यात्व को ही पुष्ट करते हैं अर्थात् चार गति परिभ्रमण की क्रिया करते हैं। यह उदय की अपेक्षा उवट्ठाएज्जा है।

जो जीव उत्तम गुणस्थान (चौथा, पांचवां, छठा) से गिर कर मिथ्यात्व में आकर चार गति परिभ्रमण की क्रिया करते हैं। यह उदय की अपेक्षा अवक्कमेज्जा है।

करता है + ।

उपशमभाव में संयम की रुचि होती है । संयम लेकर विचरते हुए कदाचित् किसी जीव के मिथ्यात्वमोहनीय उदय में आता है तब अपने आप संयम से भ्रष्ट हो जाता है और मिथ्यात्व की रुचि जगने से मिथ्यात्वी हो जाता है ।

जीव ने जो कर्म किये हैं, उनको आत्मप्रदेशों में निश्चय ही वेदता है, अनुभाग और विपाकों में वेदने की भजना है । बांधे हुए कर्मों को भोगे बिना छुटकारा नहीं होता है । केवली भगवान् सब जानते हैं कि 'यह जीव तो तपस्या से कर्मों की उदीरणा करके कर्मों का वेदेगा (भोगेगा) और यह जीव कर्म उदय में आने से वेदेगा ।'

+ (१) जब जीव के मोहनीयकर्म उपशांत होता है तब पण्डितवीर्य द्वारा उवट्ठाण करता है अर्थात् ऊपर के उत्तम गुणस्थानों में रहा हुआ जीव उन्हीं गुणस्थानों को पुष्ट करता है।

नोट– यहां छठे गुणस्थान की अपेक्षा पण्डितवीर्य सम्भावित है।

(२) जब जीव के मोहनीयकर्म उपशांत होता है तब बालपण्डितवीर्य द्वारा अपक्रमण करता है अर्थात् नीचे गुणस्थानों से ऊपर के गुणस्थानों में जाता है। मिथ्यात्व से निकल कर समकित में , देशविरति में तथा सर्वविरति संयम में जाता है।

नोट– यहां पांचवें गुणस्थान की अपेक्षा बालपण्डितवीर्य सम्भावित है और छठे गुणस्थान की अपेक्षा पण्डितवीर्य सम्भावित है।

प्रश्न:–उपशम की अपेक्षा उवट्ठाएज्जा और अवक्कम्मेज्जा में क्या अन्तर है ?

उत्तर– जो जीव उत्तम गुणस्थानों (चौथा, पांचवां, छठा) में रहे हुए हैं और उन्हीं गुणस्थानों की क्रिया करते हैं। यह उपशम की अपेक्षा उवट्ठाएज्जा है।

२०. निर्ग्रन्थ की लघुता आदि का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक पहला, उद्देशा नवमा)

१. अहो भगवन् ! क्या श्रमण निर्ग्रन्थों कि लिए लघुता, अल्पइच्छा, अमूर्च्छा, अगृद्धिपना और अप्रतिबद्धता प्रशस्त है ? हां, गौतम ! प्रशस्त है ।

२. अहो भगवन् ! क्या श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए अक्रोधीपना, अमानीपना, अमायीपना और अलोभीपना प्रशस्त है ? हां, गौतम ! प्रशस्त है ।

३. अहो भगवन् ! क्या श्रमण निर्ग्रन्थ कंखाप्रदोष (मिथ्यात्वमोहनीय) क्षीण होने पर अन्तकर और चरमशरीरी होता है ? अथवा पहले बहुत मोह वाला भी हो, परन्तु पीछे संवुडा (संवृत-संवर वाला) होकर काल करे तो सिद्ध, बुद्ध, मुक्त यावत् सब दुःखों का अंत करने वाला होता है ? हां, गौतम ! होता है ।

२१. आयुष्यबंध का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक पहला, उद्देशा नववां)

१. अहो भगवन् ! अन्यतीर्थी कहते हैं कि एक जीव एक समय में दो आयुष्य बांधता है– इस भव का और परभव का । जिस समय इस भव का आयुष्य बांधता है, उस समय परभव का भी

जो जीव मिथ्यात्व से निकलकर उत्तम गुणस्थान में जाकर पण्डितवीर्य और बालपण्डितवीर्य की क्रिया करते हैं, यह उपशम की अपेक्षा अवक्कम्मेज्जा है ।

आयुष्य बांधता और जिस समय परभव का आयुष्य बांधता है, उस समय इस भव का भी आयुष्य बांधता है । इस भव का आयुष्य बांधने से परभव का आयुष्य बांधता है और परभव का आयुष्य बांधने से इस भव का आयुष्य बांधता है । अहो भगवन् ! क्या अन्यतीर्थियों का यह कहना सत्य है ? हे गौतम ! अन्यतीर्थियों का यह कहना मिथ्या है, क्योंकि एक जीव एक समय में एक आयुष्य बांधता है– इस भव का या परभव का । जिस समय इस भव का आयुष्य बांधता है, उस समय परभव का आयुष्य नहीं बांधता और जिस समय परभव का आयुष्य बांधता है, उस समय इस भव का आयुष्य नहीं बांधता । * इस भव का आयुष्य बांधने से परभव का आयुष्य नहीं बांधता और परभव का आयुष्य बांधने से इस भव का आयुष्य नहीं बांधता ।

२२. अन्यतीर्थी का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक सातवां, उद्देशा दसवां)

राजगृह नगर के बाहर + बहुत अन्यतीर्थी रहते हैं ।

** मनुष्य मनुष्य का आयुष्य बांधे वह इस भव का आयुष्य कहलाता है। मनुष्य अन्य गति (नारकी, तिर्यंच, देवता) का आयुष्य बांधे, वह परभव का आयुष्य कहलाता है।*

+ १ कालोदयी, २ शैलोदायी, ३ शैवालोदायी, ४ उदय, ५ नामोदय, ६ नर्मोदय, ७ अन्यपालक, ८ शैलपालक, ९ शंखपालक, १० सुहस्ती, ११ गृहपति।

उनमें से कालोदायी भगवान् के पास आया और भगवान् से पंचास्तिकाया के विषय में प्रश्न पूछा । भगवान् ने फरमाया कि हे कालोदायी ! पांच अस्तिकाय हैं– धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्‌गलास्तिकाय । इन में से जीवास्तिकाय जीव है, बाकी ४ अजीव हैं । इनमें से पुद्‌गलास्तिकाय रूपी है, बाकी ४ अरूपी हैं । धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, ये अजीव अरूपी हैं, इन पर कोई खड़ा रहने में, सोने में, बैठने में समर्थ नहीं है । पुद्‌गलास्तिकाय अजीव रूपी है, इस पर कोई भी खड़ा रह सकता है, सो सकता है, बैठ सकता है ।

अहो भगवन् ! क्या अजीवकाय (धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्‌गलास्तिकाय) को पापकर्म लगता है ? हे कालोदायी ! अजीवकाय को पापकर्म नहीं लगता है, किन्तु जीवास्तिकाय को पापकर्म लगता है ।

भगवान् से प्रश्नोत्तर करके कालोदायी बोध को प्राप्त हुआ । खन्दकजी की तरह भगवान् के पास दीक्षा अंगीकार की, ग्यारह अंग पढ़े ।

किसी एक समय कालोदायी अणगार ने भगवान् से पूछा कि अहो भगवन् ! क्या जीवों को पापकर्म अशुभफल विपाक सहित होते हैं ? हां, कालोदायी ! जीवों को पापकर्म अशुभ फल-विपाक सहित होते हैं, जैसे विषमिश्रित भोजन करते समय तो मीठा लगता है किन्तु पीछे परिणमते समय दुःखरूप दुर्वर्णादि रूप होता है । इसी तरह १८ पापकर्म करते हुए तो जीव को अच्छा लगता है, किन्तु पाप के कड़वे फल भोगते समय जीव दुःखी होता है ।

अहो भगवन् ! क्या जीवों को शुभकर्म शुभफल वाले होते हैं ? हां, कालोदायी ! शुभकर्म शुभफल वाले होते हैं, जैसे कड़वी औषधि मिश्रित स्थालीपाक (मिट्टी के बर्तन में अच्छी तरह पकाया हुआ भोजन) खाते समय तो अच्छा नहीं लगता किन्तु पीछे परिणमते समय शरीर में सुखदायी होता है । इसी तरह १८ पाप त्यागते समय तो अच्छा नहीं लगता परन्तु पीछे जब शुभ कल्याणकारी पुण्यफल उदय में आता है तब बहुत सुखदायी होता है ।

अहो भगवन् ! एक पुरुष अग्नि जलाता है और एक पुरुष अग्नि बुझाता है, इल दोनों में कौन महाकर्मी, महाक्रिया वाला, महाआस्रवी, महावेदना वाला है और कौन अल्पकर्मी अल्पक्रिया वाला, अल्पआस्रवी, अल्पवेदना वाला है ? हे कालोदायी ! जो पुरुष अग्नि जलाता है वह महाकर्मी यावत् महावेदना वाला है क्योंकि वह पांच काया (पृथ्वीकाय, अप्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, त्रसकाय) का महा आरम्भी है, एक तेउकाया का अल्प आरम्भी है । जो पुरुष अग्नि बुझाता है वह अल्पकर्मी यावत् अल्पवेदना वाला है, क्योंकि वह पांच काया का अल्प आरम्भी है, एक तेउकाया का महा आरम्भी है, इसलिए अल्पकर्मी यावत् अल्पवेदना वाला है ।

अहो भगवन् ! क्या अचित्त पुद्गल अवभास करते हैं, उद्योत करते हैं, तपते हैं, प्रकाश करते हैं ? हां, कालोदायी ! अचित्त पुद्गल अवभास करते हैं यावत् प्रकाश करते हैं । कोपायमान तेजोलेशी लब्धिवंत अणगार की तेजोलेश्या निकल कर नजदीक या दूर जहां जाकर गिरती है, वहां वे अचित्त पुद्गल अवभास करते हैं यावत् प्रकाश करते हैं ।

कालोदायी अणगार उपवास बेला तेला आदि तपस्या करते हुए केवलज्ञान केवलदर्शन उपार्जन कर सिद्ध बुद्ध यावत् मुक्त हुए ।

२३. छह द्रव्य का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक उन्नीसवां, उद्देशा दूसरा)

१. अहो भगवन् ! आकाश कितने प्रकार का है ? हे गौतम ! आकाश दो प्रकार का है– लोकाकाश और अलोकाकाश ।

२. अहो भगवन् ! लोकाकाश में क्या जीव है ? या जीव के देश हैं या जीव के प्रदेश हैं ? अजीव है या अजीव के देश हैं या अजीव के प्रदेश हैं ? हे गौतम ! लोकाकाश में जीव भी हैं, जीव के देश भी हैं, जीव के प्रदेश भी हैं । अजीव भी हैं, अजीव के देश भी हैं, अजीव के प्रदेश भी हैं ।

३. अहो भगवन् ! धर्मास्तिकाय कितनी बड़ी है ? हे गौतम ! धर्मास्तिकाय लोकरूप, लोकमात्र, लोकप्रमाण है । सम्पूर्ण लोक को अवगाहन कर रखा है । इसी तरह अधर्मास्तिकाय, लोकाकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय का कह देना चाहिए ।

४. अहो भगवन् ! धर्मास्तिकाय अधोलोक को कितना स्पर्शा है ? हे गौतम ! आधा झाझेरा (७ राजू से कुछ अधिक) स्पर्शा है । * दूसरे शतक में कहा है, उस माफक सब अधिकार

** भगवतीसूत्र के थोकड़े के प्रथम भाग के पृष्ठ ११२-११३ माफक कहना ।*

यहां कह देना यावत् –

५. अहो भगवन् ! ईषत्प्राग्भारापृथ्वी (सिद्धशिला) ने क्या लोकाकाश के संख्यातवें भाग को स्पर्शा है या असंख्यातवें भाग वगैरह को स्पर्शा है ? हे गौतम ! संख्यातवें भाग को नहीं स्पर्शा है किन्तु असंख्यातवें भाग को स्पर्शा है । बहुत असंख्यातवां भाग नहीं स्पर्शा, बहुत संख्यातवां भाग नहीं स्पर्शा, सर्व लोक को नहीं स्पर्शा ।

६. अहो भगवन् ! धर्मास्तिकाय के अभिवचन (पर्यायवाची शब्द) + कितने हैं ? हे गौतम ! अनेक हैं, जैसे कि– धर्म, धर्मास्तिकाय, प्राणातिपातविरमण यावत् मिथ्यादर्शनशल्यविरमण (१८ ही पाप का विरमण), पांच समिति, तीन गुप्ति आदि अनेक नाम हैं ।

७. अहो भगवन् ! अधर्मास्तिकाय के कितने नाम हैं ? हे

+ यहां पर यह प्रश्न किया गया है कि 'धर्मास्तिकाय' शब्द के द्वारा कहे जाने वाले अर्थ के वाचक कितने शब्द हैं ? इसका उत्तर यह है कि धर्मास्तिकाय शब्द के प्रतिपाद्य दो अर्थ हैं– धर्मास्तिकायद्रव्य तथा सामान्यधर्म और विशेषधर्म। धर्मास्तिकायद्रव्यप्रतिपादक और सामान्यधर्मप्रतिपादक 'धर्म' शब्द है । 'प्राणातिपातविरमण' आदि शब्द विशेषधर्म प्रतिपादक हैं। इसके सिवाय सामान्य रूप से अथवा विशेष रूप से चारित्र-धर्म के प्रतिपादक जो शब्द हैं, वे सब धर्मास्तिकाय के अभिवचन (पर्यायवाची) शब्द कहे गये हैं। इसी तरह अधर्मास्तिकाय के विषय में भी जानना चाहिए।

गौतम ! अधर्म, अधर्मास्तिकाय, प्राणातिपात से लेकर मिथ्यादर्शनशल्य तक १८ ही पाप, पांच असमिति, तीन अगुप्ति आदि अनेक नाम हैं ।

८. अहो भगवन् ! आकाशास्तिकाय के कितने नाम हैं ? हे गौतम ! आकाश, आकाशास्तिकाय, गगन, नभ, सम, विषम, खह, विहाय, वीचि, विवर, अम्बर, अम्बरस (अम्ब-जल रूपी रस जिससे प्राप्त हो), छिद्र, शुषिर, मार्ग, विमुख, अर्द, व्यर्द, आधार, व्योम, भाजन, अन्तरिक्ष, श्याम, अवकाशान्तर, अगम, स्फटिक (स्वच्छ), अनन्त आदि अनेक नाम हैं ।

९. अहो भगवन् ! जीवास्तिकाय के कितने नाम हैं ? हे गौतम ! जीव, जीवास्तिकाय, प्राण, भूत, सत्त्व, विज्ञ, चेता, (पुद्गलों का संचय करने वाला), जेता (कर्मरूप शत्रु को जीतने वाला), आत्मा, रंगण (रागयुक्त) हिंडुक (गमनशील) जंतु, योनि (उत्पादक), स्वयंभूति, शरीरी, नायक, अन्तरात्मा आदि अनेक नाम हैं ।

१०. अहो भगवन् ! पुद्गलास्तिकाय के कितने नाम हैं ? हे गौतम ! पुद्गल, पुद्गलास्तिकाय, परमाणु, द्विप्रदेशी से लेकर अनन्तप्रदेशी आदि अनेक नाम हैं ।

११. अहो भगवन् ! प्राणातिपात आदि किसमें परिणमते हैं ? हे गौतम ! प्राणातिपात आदि १८ पाप तथा १८ पापों से विरमण, औत्पातिकी आदि चार बुद्धि, अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा, उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकारपराक्रम, नारकीपना, असुरकुमारपना, यावत् वैमानिकपना, ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्म, कृष्णलेश्या आदि छह लेश्या, सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, मिश्रदृष्टि,

चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन, आभिनिबोधिकज्ञान यावत् विभंगज्ञान, आहारसंज्ञा आदि ४ संज्ञा, औदारिक आदि ५ शरीर, योग तीन, साकार-उपयोग, निराकार-उपयोग आदि तथा इनके समान अन्य सब धर्म आत्मा में परिणमते हैं, आत्मा के सिवाय अन्यत्र नहीं परिणमते ।

१२. अहो भगवन् ! गर्भ में उत्पन्न होता हुआ जीव कितने वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श वाले परिणामों में परिणमता है ? हे गौतम ! पांच वर्ण, पांच रस, दो गन्ध, आठ स्पर्श वाले परिणामों से परिणमता है ।

१३. अहो भगवन् ! क्या जीव कर्मों से मनुष्य, तिर्यंच आदि अनेक रूप से परिणमता है ? हां, गौतम ! जीव और यह सारा जगत् कर्मों से विविध रूप से परिणमता है, कर्मों के बिना नहीं परिणमता है ।

२४. पढम-अपढम का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक अठारहवां, उद्देशा पहला)

जीवाहारग भवसण्णि, लेस्सा दिट्ठि य संजय कसाए ।
णाणे जोगुवओगे, वेए य सरीर पज्जत्ती ।।

अर्थ- १ जीवद्वार, २ आहारद्वार, ३ भवीद्वार, ४ संज्ञी (सन्नी) द्वार, ५ लेश्याद्वार, ६ दृष्टिद्वार, ७ संयतद्वार, ८ कषायद्वार, ९ ज्ञानद्वार, १० योगद्वार, ११ उपयोगद्वार, १२ वेदद्वार, १३ शरीरद्वार, १४ पर्याप्तिद्वार ।

१. जीवद्वार– अहो भगवन् ! क्या जीव जीवत्व (जीवभाव) की अपेक्षा पढम (प्रथम) * है या अपढम (अप्रथम) है ? हे गौतम ! पढम नहीं, अपढम है । इसी तरह एक जीव, बहुत जीव, और २४ दण्डक के जीव कह देना ।

अहो भगवन् ! क्या जीव सिद्धत्व (सिद्धपणा) की अपेक्षा पढम है या अपढम है ? हे गौतम ! पढम है, अपढम नहीं है । इसी तरह बहुत सिद्ध का कह देना ।

२. आहारकद्वार– अहो भगवन् ! क्या जीव आहारकभाव की अपेक्षा पढम है या अपढम है ? हे गौतम ! पढम नहीं, अपढम है। इसी तरह समुच्चय एक जीव, बहुत जीव और २४ दण्डक कह देना ।

अहो भगवन् ! क्या जीव अनाहारकभाव की अपेक्षा पढम है या अपढम है ? हे गौतम ! एक जीव सिय (कदाचित्) पढम,

---

* *जो जेणे पत्तपुव्वो भावो, सो तेण अपढमो होइ ।*
सेसेसु होइ पढमो, अपत्तपुव्वेसु भावेसु ।।

अर्थ– जिस जीव को जो भाव पहले प्राप्त किया हुआ है, उसकी अपेक्षा से वह अपढम (अप्रथम) कहलाता है। जैसे जीव को जीवत्व (जीवपना) अनादिकाल से प्राप्त है। इसलिए जीवत्व की अपेक्षा जीव अपढम है। जो भाव जीव को कभी प्राप्त नहीं हुए, परन्तु, पीछे प्राप्त होवें, उसकी अपेक्षा पढम (प्रथम) कहलाता है, जैसे सिद्धत्व (सिद्धपना) की अपेक्षा जीव पढम है, क्योंकि सिद्धत्व जीव को पहले कभी प्राप्त नहीं हुआ है।

(सिद्ध की अपेक्षा), सिय अपढम (विग्रहगति की अपेक्षा) घणा जीव पढमा वि, अपढमा वि, (पढम भी हैं अपढम भी हैं) । २४ दण्डक के जीव एक जीव की अपेक्षा, बहुत जीव की अपेक्षा अपढम हैं । सिद्ध एक जीव की अपेक्षा, बहुत जीव की अपेक्षा पढम है ।

३. भवीद्वार– अहो भगवन् ! क्या जीव भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक की अपेक्षा पढम है या अपढम है ? हे गौतम ! भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक समुच्चयजीव और चौवीस ही दंडक एक जीव, बहुत जीव की अपेक्षा अपढम हैं । नोभवसिद्धिक - नोअभवसिद्धिक (सिद्ध) एक जीव, बहुत जीव सिद्धभाव की अपेक्षा पढम हैं, अपढम नहीं ।

४. संज्ञी (सन्नी) द्वार– अहो भगवन् ! क्या समुच्चय जीव और १६ दण्डक (५ स्थावर, ३ विकलेन्द्रिय के कुल ८ दण्डक छोड़कर) के संज्ञी जीव संज्ञीभाव की अपेक्षा पढम हैं या अपढम हैं ? हे गौतम ! पढम नहीं, अपढम हैं । इसी तरह बहुत जीव की अपेक्षा कह देना । इसी तरह असंज्ञी में समुच्चय जीव और २२ दण्डक (ज्योतिष वैमानिक को छोड़कर, क्योंकि इनमें असंज्ञी नहीं उपजते हैं) एक जीव बहुत जीव की अपेक्षा कह देना (पढम नहीं, अपढम हैं) । नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी जीव, मनुष्य और सिद्ध एक जीव बहुत जीव की अपेक्षा पढम हैं, अपढम नहीं हैं ।

५. लेश्याद्वार– सलेशी यावत् शुक्ललेशी (सलेशी, कृष्णलेशी यावत् शुक्ललेशी तक जितने, जितने पावें उतने दण्डक कह देना) एक जीव, बहुत जीव की अपेक्षा पढम नहीं, अपढम है । अलेशी जीव, मनुष्य और सिद्ध अलेशीभाव की अपेक्षा पढम हैं,

अपढम नहीं ।

६. दृष्टिद्वार– अहो भगवन् ! क्या सम्यग्दृष्टि जीव सम्यग्दृष्टि भाव की अपेक्षा पढम है या अपढम ? हे गौतम ! * सिय पढम, सिय अपढम । इसी तरह समुच्चय जीव, + १९ दण्डक कह देना । बहुत जीव आसरी पढमा वि, (प्रथम भी है), अपढमा वि (अप्रथम भी है) । सिद्ध एक जीव आसरी, बहुत जीव आसरी पढम हैं, अपढम नहीं । मिथ्यादृष्टि समुच्चय जीव २४ ही दण्डक में एक जीव आसरी, बहुत जीव आसरी अपढम है । मिश्रदृष्टि समुच्चय जीव, १६ दण्डक एक जीव आसरी सिय पढम, सिय अपढम । बहुत जीव आसरी पढमा वि, अपढमा वि ।

७. संयमद्वार– अहो भगवन् ! क्या जीव संयतभाव की अपेक्षा पढम है या अपढम है ? हे गौतम ! समुच्चय जीव और मनुष्य तथा संयतासंयत जीव, मनुष्य और तिर्यंच एक जीव आसरी सिय पढम, सिय अपढम और बहुत जीव आसरी पढमा वि अपढमा वि । असंयत समुच्चय जीव २४ दण्डक एक जीव आसरी, बहुत जीव आसरी अपढम है, पढम नहीं । नोसंयत-नो-असंयत-नो - संयतासंयत जीव, सिद्ध एक जीव आसरी बहुत जीव असारी पढम

** कोई जीव पहली बार सम्यग्दर्शन को प्राप्त करता है, इस अपेक्षा से वह पढम (प्रथम) है। कोई सम्यग्दृष्टि जीव सम्यग्दर्शन से गिर कर फिर सम्यगदर्शन प्राप्त करता है, इस अपेक्षा से वह अपढम (अप्रथम) है।*

+ एकेन्द्रिय जीवों को सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं होता। इसलिए एकेन्द्रियों के पांच दण्डक छोड़कर बाकी १९ कहे हैं।

हैं, अपढम नहीं ।

८. कषायद्वार– अहो भगवन् ! क्या सकषायी जीव कषायभाव की अपेक्षा पढम है या अपढम है ? हे गौतम ! सकषायी, क्रोधकषायी यावत् लोभकषायी समुच्चय जीव, २४ दण्डक एक जीव की अपेक्षा, बहुत जीव की अपेक्षा अपढम है, पढम नहीं । अकषायी समुच्चय जीव और मनुष्य एक जीव की आसरी सिय पढम (क्योंकि यथाख्यातचारित्र प्रथमबार प्राप्त किया) सिय अपढम (पडवाइ की अपेक्षा), बहुत जीव की अपेक्षा पढमा वि अपढमा वि । सिद्ध एक जीव की अपेक्षा, बहुत जीव की अपेक्षा पढम हैं, अपढम नहीं हैं ।

९. ज्ञानद्वार– अहो भगवन् ! क्या सज्ञानी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी जीव ज्ञानभाव की अपेक्षा पढम है या अपढम ? हे गौतम ! सज्ञानी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी समुच्चय जीव, १९ दण्डक, अवधि-ज्ञानी समुच्चय जीव १६ दण्डक, मनःपर्ययज्ञानी समुच्चय जीव और मनुष्य एक जीव की अपेक्षा सिय पढम सिय अपढम । बहुत जीव की अपेक्षा पढमा वि अपढमा वि नवरं समुच्चय ज्ञानी में सिद्ध भगवान् एक जीव की अपेक्षा, बहुत जीव की अपेक्षा पढम हैं, अपढम नहीं । केवलज्ञानी समुच्चय जीव मनुष्य और सिद्ध एक जीव की अपेक्षा बहुत जीव की अपेक्षा पढम हैं, अपढम नहीं, समुच्चय अज्ञानी, मति-अज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी समुच्चय जीव, २४ दण्डक, विभंगज्ञानी समुच्चय जीव १६ दण्डक एक जीव की अपेक्षा बहुत जीव की अपेक्षा अपढम हैं, पढम नहीं हैं ।

१०. योगद्वार– अहो भगवन् ! क्या सयोगी जीव पढम है या अपढम ? हे गौतम ! सयोगी, काययोगी समुच्चय जीव २४ दण्डक, मनयोगी समुच्चय जीव १६ दण्डक, वचनयोगी समुच्चय जीव १९ दण्डक, एक जीव की अपेक्षा बहुत जीव की अपेक्षा अपढम हैं, पढम नहीं । अयोगी जीव मनुष्य, सिद्ध एक जीव बहुत जीव पढम हैं, अपढम नहीं ।

११. उपयोगद्वार– अहो भगवन् ! क्या जीव उपयोग की अपेक्षा पढम है या अपढम ? हे गौतम ! सागारोवउत्ता (साकार उपयोग वाला) अणागारोवउत्ता (अनाकार उपयोग वाला) समुच्चय जीव २४ दण्डक एक जीव की अपेक्षा बहुत जीव की अपेक्षा अपढम हैं, पढम नहीं । सिद्ध भगवान् एक जीव की अपेक्षा बहुत जीव की अपेक्षा पढम हैं, अपढम नहीं ।

१२. वेदद्वार– अहो भगवन् ! क्या सवेदी जीव वेद की अपेक्षा पढम है या अपढम ? हे गौतम ! सवेदी समुच्चय जीव २४ दण्डक, स्त्रीवेदी पुरुषवेदी समुच्चय जीव १५ दण्डक, नपुंसकवेदी ११ दण्डक एक जीव की अपेक्षा बहुत जीव की अपेक्षा अपढम हैं, पढम नहीं । अवेदी समुच्चय जीव मनुष्य एक जीव सिय पढम सिय अपढम, बहुत जीव पढमा वि अपढमा वि । अवेदी सिद्ध एक बहुत जीव पढम हैं, अपढम नहीं ।

१३. शरीरद्वार– अहो भगवन् ! क्या सशरीरी जीव शरीर के अपेक्षा पढम है या अपढम है ? हे गौतम ! सशरीरी समुच्चय जीव २४ दण्डक, औदारिकशरीर समुच्चय जीव १० दण्डक,

वैक्रियशरीर समुच्चय जीव १७ दण्डक, तैजस कार्मण, शरीर समुच्चय जीव २४ दण्डक एक जीव की अपेक्षा बहुत जीव की अपेक्षा अपढम हैं, पढम नहीं । आहारकशरीर जीव और मनुष्य एक जीव सिय पढम सिय अपढम, बहुत जीव पढमा वि अपढमा वि । अशरीरी जीव और सिद्ध एक जीव की अपेक्षा बहुत जीव की अपेक्षा पढम है, अपढम नहीं ।

१४. पर्याप्तिद्वार– अहो भगवन् ! क्या जीव पर्याप्ति की अपेक्षा पढम है या अपढम है । हे गौतम ! चार पर्याप्त और अपर्याप्त समुच्चय जीव, २४ दण्डक, भाषापर्याप्त और अपर्याप्त समुच्चय जीव १९ दण्डक, मनपर्याप्त समुच्चय जीव और १६ दण्डक, एक जीव की अपेक्षा, बहुत जीव की अपेक्षा अपढम हैं, पढम नहीं ।

२५. चरम अचरम का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक अठारहवां, उद्देशा पहला)

जीवाहारग भव सण्णि, लेस्सा दिट्ठि य संजय कसाए ।
णाणे जोगुवओगे, वेए य सरीर पज्जत्ती ।।

अर्थ– १ जीवद्वार, २ आहारद्वार, ३ भवीद्वार, ४ संज्ञीद्वार, ५ लेश्याद्वार, ६ दृष्टिद्वार, ७ संयमद्वार, ८ कषायद्वार, ९ ज्ञानद्वार, १० योगद्वार, ११ उपयोगद्वार, १२ वेदद्वार, १३ शरीरद्वार, १४ पर्याप्तिद्वार ।

१. जीवद्वार– अहो भगवन् ! क्या जीव जीवभाव की

अपेक्षा + चरम है या अचरम है ? हे गौतम ! जीव जीवभाव की अपेक्षा * अचरम है, चरम नहीं । इसी तरह समुच्चय जीव और सिद्ध एक जीव की अपेक्षा, बहुत जीव की अपेक्षा अचरम हैं, चरम नहीं । २४ दण्डक के जीव एक की अपेक्षा सिय चरम सिय अचरम । बहुत जीव की अपेक्षा चरमा वि अचरमा वि ।

२. आहारकद्वार– अहो भगवन् ! क्या जीव आहारकभाव की अपेक्षा चरम है या अचरम ? हे गौतम ! आहारक समुच्चय जीव, २४ दण्डक एक जीव की अपेक्षा सिय चरम सिय अचरम, बहुत जीव की अपेक्षा चरमा वि अचरमा वि । अनाहारक जीव और सिद्ध एक जीव की अपेक्षा बहुत जीव की अपेक्षा अचरम हैं, चरम नहीं । अनाहारक २४ दण्डक के जीव एक जीव की अपेक्षा सिय चरम सिय अचरम, बहुत जीव की अपेक्षा चरमा वि अचरमा वि ।

३. भवीद्वार– अहो भगवन् ! क्या जीव भवसिद्धिक की

\+ *जो जं पाविहिति पुणो, भावं सो तेण अचरिमो होइ।*
अच्चंत वियोगो जस्स, जेण भावेण सो चरिमो ।।

अर्थ– जो जीव जिस भाव को फिर प्राप्त करेगा, उस भाव की अपेक्षा से वह अचरम कहा जाता है और जीव का जिस भाव से एकांत वियोग हो जाता है, वह चरम कहा जाता है।

* *जिस भाव का सर्वदा के लिए अन्त हो जाय, वह चरम है और जिस भाव का कभी अन्त न हो , वह अचरम है। जीव के जीवत्व (जीवपना) का कभी अन्त नहीं होगा, इसलिए जीव का जीवपना अचरम है, चरम नहीं।*

अपेक्षा चरम है या अचरम है ? हे गौतम ! भवसिद्धिक एक जीव की अपेक्षा, बहुत जीव की अपेक्षा चरम है, अचरम नहीं । २४ दण्डक में एक जीव की अपेक्षा सिय चरम सिय अचरम, बहुत जीव की अपेक्षा चरमा वि अचरमा वि । अभवसिद्धिक समुच्चय जीव, २४ दण्डक एक जीव की अपेक्षा, बहुत जीव की अपेक्षा अचरम हैं, चरम नहीं । नोभवसिद्धिक-नोअभवसिद्धिक जीव सिद्ध एक जीव की अपेक्षा, बहुत जीव की अपेक्षा अचरम हैं, चरम नहीं ।

४. संज्ञीद्वार– अहो भगवन् ! क्या जीव संज्ञीभाव की अपेक्षा चरम है या अचरम है ? हे गौतम ! संज्ञी समुच्चय जीव १६ दण्डक और असंज्ञी समुच्चय जीव २२ दण्डक एक जीव की अपेक्षा सिय चरम सिय अचरम, बहुत जीव की अपेक्षा चरमा वि अचरमा वि । नोसंज्ञी-नोअसंज्ञी समुच्चय जीव, सिद्ध एक जीव की अपेक्षा, बहुत जीव की अपेक्षा अचरम हैं, चरम नहीं । मनुष्य (केवली की अपेक्षा से) एक जीव की अपेक्षा, बहुत जीव की अपेक्षा चरम हैं, अचरम नहीं ।

५. लेश्याद्वार– अहो भगवन् ! क्या जीव लेश्या की अपेक्षा चरम हैं या अचरम हैं ? हे गौतम ! सलेशी समुच्चय जीव २४ दण्डक कृष्णलेशी, नीललेशी, कापोतलेशी समुच्चय जीव, २२ दण्डक, तेजोलेशी समुच्चय जीव, १८ दण्डक, पद्मलेशी, शुक्ललेशी समुच्चय जीव ३ दण्डक एक जीव की अपेक्षा सिय चरम सिय अचरम, बहुत जीव की अपेक्षा चरमा वि अचरमा वि । अलेशी समुच्चय जीव और सिद्ध एक जीव की अपेक्षा, बहुत जीव की अपेक्षा अचरम हैं चरम नहीं । अलेशी मनुष्य एक जीव की अपेक्षा, बहुत जीव की

अपेक्षा चरम हैं, अचरम नहीं ।

६. दृष्टिद्वार– अहो भगवन् ! क्या जीव समदृष्टि की अपेक्षा चरम है या अचरम है ? हे गौतम ! समदृष्टि समुच्चय जीव १९ दण्डक एक जीव की अपेक्षा सिय चरम सिय अचरम, बहुत जीव की अपेक्षा चरमा वि अचरमा वि । समदृष्टि, सिद्ध भगवान् एक जीव की अपेक्षा, बहुत जीव की अपेक्षा अचरम हैं, चरम नहीं । मिथ्यादृष्टि समुच्चय जीव २४ दण्डक, मिश्रदृष्टि समुच्चय जीव १६ दण्डक एक जीव की अपेक्षा सिय चरम सिय अचरम, बहुत जीव की अपेक्षा चरमा वि अचरमा वि ।

७. संयतद्वार- अहो भगवन् ! क्या जीव संयतभाव की अपेक्षा चरम है या अचरम ? हे गौताम ! संयति समुच्चय जीव और मनुष्य, संयतासंयति समुच्चय जीव, मनुष्य, तिर्यंच, असंयति समुच्चय जीव २४ दण्डक एक जीव की अपेक्षा सिय चरम सिय अचरम, बहुत जीव की अपेक्षा चरमा वि अचरमा वि । नोसंयति-नोअसंयति-नोसंयतासंयति जीव और सिद्ध एक जीव की अपेक्षा, बहुत जीव की अपेक्षा अचरम हैं, चरम नहीं ।

८. कषायद्वार– अहो भगवन् ! क्या जीव कषाय की अपेक्षा चरम है या अचरम ? हे गौतम ! सकषायी, क्रोधकषायी यावत् लोभकषायी समुच्चय जीव २४ दण्डक एक जीव की अपेक्षा सिय चरम सिय अचरम, बहुत जीव की अपेक्षा चरमा वि अचरमा वि, अकषायी जीव और सिद्ध एक जीव की अपेक्षा, बहुत जीव की अपेक्षा अचरम हैं, चरम नहीं । मनुष्य (अकषायी मनुष्य) एक जीव की अपेक्षा सिय चरम सिय अचरम, बहुत जीव की अपेक्षा

चरमा वि अचरमा वि ।

९. ज्ञानद्वार– अहो भगवन् ! क्या जीव ज्ञान की अपेक्षा चरम है या अचरम है ? हे गौतम ! समुच्चय ज्ञानी मतिज्ञानी श्रुतज्ञानी समुच्चय जीव १९ दण्डक, अवधिज्ञानी समुच्चय जीव १६ दण्डक, मनःपर्यवज्ञानी समुच्चय जीव और मनुष्य एक जीव की अपेक्षा सिय चरम सिय अचरम, बहुत जीव की अपेक्षा चरमा वि, अचरमा वि । केवलज्ञानी समुच्चय जीव और सिद्ध एक जीव की अपेक्षा, बहुत जीव की अपेक्षा अचरम हैं, चरम नहीं । मनुष्य (केवलज्ञानी मनुष्य) एक जीव की अपेक्षा, बहुत जीव की अपेक्षा चरम है, अचरम नहीं ।

समुच्चय अज्ञानी, मति-अज्ञानी, श्रुत-अज्ञानी समुच्चय जीव २४ दण्डक, विभंगज्ञानी समुच्चय जीव १६ दण्डक एक जीव की अपेक्षा सिय चरम सिय अचरम, बहुत जीव की अपेक्षा चरमा वि अचरमा वि ।

१०. योगद्वार– अहो भगवन् ! क्या जीव योग की अपेक्षा चरम है या अचरम है ? हे गौतम ! सयोगी काययोगी समुच्चय जीव २४ दण्डक, मनयोगी समुच्चय जीव १६ दण्डक, वचनयोगी समुच्चय जीव १९ दण्डक एक जीव की अपेक्षा सिय चरम सिय अचरम, बहुत जीव की अपेक्षा चरमा वि अचरमा वि । अयोगी समुच्चय जीव और सिद्ध एक जीव की अपेक्षा, बहुत जीव की अपेक्षा अचरम है,, चरम नहीं । मनुष्य (अयोगी) एक जीव की अपेक्षा बहुत जीव की अपेक्षा चरम है, अचरम नहीं ।

११. उपयोगद्वार– अहो भगवन् ! क्या जीव उपयोग की

अपेक्षा चरम है या अचरम है ? हे गौतम ! सागारोवउत्ता (साकार-उपयोग वाला), अणगारोवउत्ता (अनाकार-उपयोग वाला) समुच्चय जीव और सिद्ध एक जीव की अपेक्षा, बहुत जीव की अपेक्षा अचरम हैं, चरम नहीं । २४ दण्डक एक जीव की अपेक्षा सिय चरम सिय अचरम, बहुत जीव की अपेक्षा चरमा वि अचरमा वि ।

१२. वेदद्वार- अहो भगवन् ! क्या जीव वेद की अपेक्षा चरम है या अचरम है ? हे गौतम ! सवेदी समुच्चय जीव २४ दण्डक, स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी समुच्चय जीव १५ दण्डक, नपुंसकवेदी समुच्चय जीव ११ दण्डक एक जीव की अपेक्षा सिय चरम सिय अचरम, बहुत जीव की अपेक्षा चरमा वि अचरमा वि । अवेदी जीव और सिद्ध एक जीव की अपेक्षा, बहुत जीव की अपेक्षा अचरम हैं, चरम नहीं । मनुष्य एक जीव की अपेक्षा सिय चरम सिय अचरम, बहुत जीव की अपेक्षा चरमा वि, अचरमा वि ।

१३. शरीरद्वार- अहो भगवन् ! क्या जीव शरीर की अपेक्षा चरम है या अचरम है ? हे गौतम ! सशरीरी समुच्चय जीव २४ दण्डक, औदारिकशरीर समुच्चय जीव १० दण्डक, वैक्रियशरीर समुच्चय जीव १७ दण्डक, आहारकशरीर समुच्चय जीव मनुष्य, तैजस-कार्मण समुच्चय जीव २४ दण्डक एक जीव की अपेक्षा सिय चरम सिय अचरम । बहुत जीव की अपेक्षा चरमा वि अचरमा वि । अशरीरी जीव सिद्ध एक जीव की अपेक्षा, बहुत जीव की अपेक्षा अचरम है, चरम नहीं ।

१४. पर्याप्तिद्वार- अहो भगवन् ! क्या जीव पर्याप्ति की अपेक्षा चरम है या अचरम है ? हे गौतम ! ४ पर्याप्ति ४

अपर्याप्ति समुच्चय जीव २४ दण्डक, * मन-वचन पर्याप्ति समुच्चय जीव १९ दण्डक एक जीव की अपेक्षा सिय चरम सिय अचरम , बहुत जीव की अपेक्षा चरमा वि अचरमा वि ।

२६. माकन्दीपुत्र अनगार का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक अठारहवां, उद्देशा तीसरा)

१. अहो भगवन् ! बंध कितने प्रकार का है ? हे माकन्दीपुत्र ! बंध दो प्रकार का है– द्रव्यबंध और भावबंध ।

२. अहो भगवन् ! द्रव्यबंध के कितने भेद हैं ? हे माकन्दीपुत्र ! द्रव्यबंध के दो भेद हैं– प्रयोगबंध और विस्रसाबंध (स्वाभाविकबंध) ।

३. अहो भगवन् ! विस्रसाबंध के कितने भेद हैं ? हे माकन्दीपुत्र ! विस्रसाबंध के दो भेद हैं– १ सादि-विस्रसाबंध, जैसे बादलों आदि का । २ अनादि- विस्रसाबंध, जैसे धर्मास्तिकाय आदि का परस्पर बंध । (धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और लोकाकाश ये तीनों आपस में परस्पर बंधे हुए हैं) ।

४. अहो भगवन् ! प्रयोगबंध के कितने भेद हैं ? हे माकन्दीपुत्र ! प्रयोगबंध के दो भेद हैं– शिथिलबंध (ढीलाबंध) और गाढबंध (मजबूतबंध) ।

५. अहो भगवन् ! भावबंध के कितने भेद हैं ? हे

** यहां मन और भाषा शामिल होने से १९ दण्डक लिये गये हैं, किन्तु सिर्फ मनपर्याप्ति के १६ दण्डक ही होते हैं।*

माकन्दीपुत्र ! भावबंध के दो भेद हैं– मूलप्रकृतिबंध और उत्तरप्रकृतिबंध । मूलप्रकृतिबंध के ज्ञानावरणीयादि ८ भेद हैं । उत्तरप्रकृतिबंध के १४८ भेद हैं, इनमें १२० प्रकृतियों का बंध होता है । जिस दण्डक में जितनी प्रकृतियों का बंध हो, सो कह देना ।

२७. जीवाजीव के ४८ द्रव्य जीव के परिभोग में आने का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक अठारहवां, उद्देशा चौथा)

अहो भगवन् ! प्राणातिपात आदि १८ पाप और इन १८ पापों का त्याग, पृथ्वीकाय आदि ५ स्थावर, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, अशरीरी जीव, परमाणुपुद्गल, शैलेशी अवस्था को प्राप्त अनगार, स्थूल आकार वाले त्रसकलेवर (द्वीन्द्रियादि), इन ४८ द्रव्यों में कितनेक जीवरूप हैं और कितनेक अजीवरूप हैं । अहो भगवन् ! क्या यह सभी जीव के परिभोग में आते हैं ? हे गौतम ! इनमें से २४ (१८ पाप, ५ स्थावर, बादर कलेवर) तो जीव के परिभोग में आते हैं , शेष २४ जीव के परिभोग में नहीं आते हैं ।

२८. स्पर्शना का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक अठारहवां, उद्देशा दसवां)

१. अहो भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार वैक्रियलब्धि से तलवार की धार पर या उस्तरे की धार पर रह सकते हैं ? हां,

गौतम ! रह सकते हैं । अहो भगवन् ! क्या वे वहां छेद, भेद को प्राप्त नहीं होते हैं ? हे गौतम ! वे वहां छेद, भेद को प्राप्त नहीं होते ।

अहो भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार वैक्रियलब्धि से अग्निशिखा में से निकल सकते हैं ? हे गौतम ! हां, अग्निशिखा से निकल सकते हैं । अहो भगवन् ! वे अग्निशिखा से निकलते हैं तो क्या जल जाते हैं ? हे गौतम ! वे जलते नहीं हैं । अहो भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार पुष्करसंवर्त मेघ के बीच में से निकल सकते हैं ? हे गौतम ! हां वे निकल सकते हैं । अहो भगवन् ! पुष्करसंवर्त मेघ के बीच में से वे निकलते हैं तो क्या भीग जाते हैं ? हे गौतम ! वे नहीं भीगते हैं । अहो भगवन् ! क्या भावितात्मा अनगार गंगा, सिन्धु महानदियों के प्रतिश्रोत-उल्टे प्रवाह में से होकर निकल सकते हैं ? हे गौतम ! हां वे निकल सकते हैं । अहो भगवन् ! गंगा, सिन्धु महानदी के उल्टे प्रवाह में होकर निकलते हुए क्या वे स्खलित होते हैं ? हे गौतम ! वे स्खलित नहीं होते । अहो भगवन् ! भावितात्मा अनगार क्या उदकावर्त (पानी के भंवर) में या उदकबिंदु में प्रवेश कर सकते हैं ? हे गौतम ! हां प्रवेश कर सकते हैं । अहो भगवन् ! भावितात्मा अनगार उदकावर्त और उदकबिंदु में प्रवेश करते हुए पानी के शस्त्र को प्राप्त होते हैं यानी भीजते हैं ? हे गौतम ! नहीं, वहां शस्त्र का संक्रमण नहीं होता ।

२. अहो भगवन् ! क्या परमाणुपुद्गल वायुकाय से स्पर्शा हुआ है अथवा परमाणुपुद्गल से वायुकाय स्पर्शी हुई है ? हे गौतम !

परमाणुपुद्‌गल वायुकाय से स्पर्शा हुआ है, किन्तु वायुकाय परमाणुपुद्‌गल से स्पर्शी हुई नहीं है । इसी तरह दो प्रदेशी स्कन्ध यावत् असंख्यात प्रदेशी स्कन्ध कह देना चाहिए । अनन्त प्रदेशी स्कन्ध सिय 'कदाचित्' स्पर्शा हुआ है और सिय नहीं स्पर्शा हुआ है ।

३. अहो भगवन् ! क्या मशक (दीवड़ी) वायुकाय से स्पर्शी हुई है अथवा वायुकाय मशक से स्पर्शी हुई है ? हे गौतम ! मशक वायुकाय से स्पर्शी हुई है, किन्तु मशक से वायुकाय नहीं स्पर्शी हुई है ।

४. अहो भगवन् ! क्या रत्नप्रभापृथ्वी के नीचे वर्णादि २० बोल अन्योन्यबद्ध, अन्योन्यस्पृष्ट यावत् अन्योन्यसंबद्ध हैं ? हां, गौतम ! हैं । इसी तरह शेष ६ नरक, १२ देवलोक, ९ ग्रैवेयक, ५ अनुत्तर विमान और इसिपब्भारा (ईषत्प्राग्भारा-सिद्धशिला) इन ३३ स्थानों के नीचे भी वर्णादि २० बोल अन्योन्यबद्ध, स्पृष्ट यावत् संबद्ध हैं ।

२९. सोमिल ब्राह्मण के प्रश्नोत्तरों का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक अठारहवां, उद्देशा दसवां)

१. वाणिज्यग्रामनगर में दूतीपलाश नामक उद्यान था । उस नगर में सोमिल नाम का ब्राह्मण रहता था । वह धनाढ्य यावत् अपरिभूत था । वह ऋग्वेदादि चारों वेदों में तथा दूसरे ब्राह्मण शास्त्रों में कुशल था, उसके पांचसौ शिष्य थे । वह अपने

कुटुम्ब का अधिपतिपना करता हुआ रहता था । एक समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वाण्ज्यिग्रामनगर के बाहर दूतीपलाश उद्यान में पधारे । भगवान् के आगमन को सुनकर परिषद् वन्दने को गई । सोमिल ब्राह्मण भी अपने साथ एक सौ शिष्यों को लेकर प्रश्न पूछने के लिए भगवान् के पास गया । भगवान् से बहुत दूर नहीं, बहुत नजदीक नहीं बैठकर भगवान् से इस प्रकार प्रश्न पूछे–

१. अहो भगवन् ! क्या आपके यात्रा, यापनीय (जपनी), अव्याबाध और प्रासुक विहार है ? हे सोमिल ! मेरे यात्रा, यापनीय, अव्याबाध और प्रासुक विहार है।

२. अहो भगवन् ! आपके यात्रा क्या है ? हे सोमिल ! तप, नियम, संयम, स्वाध्याय, ध्यान और आवश्यक योगों में जो मेरी यतना है, वह मेरी यात्रा है ।

३. अहो भगवन् ! आपके यापनीय क्या है ? हे सोमिल ! यापनीय के दो भेद हैं– इन्द्रिययापनीय और नोइन्द्रिययापनीय । श्रोत्रेन्द्रिय आदि पांच इन्द्रियां मेरे अधीन (वश में) प्रवर्तती हैं, यह मेरे इन्द्रिययापनीय है । क्रोध, मान, माया, लोभ, ये चार कषाय मेरे क्षय हुए हैं, उदय में नहीं आते, यह मेरे नोइन्द्रिययापनीय है ।

४. अहो भगवन् ! आपके अव्याबाध क्या है ? हे सोमिल ! वात पित्त कफ और सन्निपात से पैदा होने वाले शरीर संबंधी अनेक रोग मेरे उपशान्त हो गये हैं, उदय में नहीं आते, यह मेरे अव्याबाध है।

५. अहो भगवन् ! आपके प्रासुक विहार क्या हैं ? हे

सोमिल ! आराम, उद्यान, देवकुल, सभा आदि स्त्री पशु नपुंसक से रहित स्थानों में निर्दोष और एषणीय पट पाटला, शय्या संथारा प्राप्त कर मैं विचरता हूं, यही मेरे प्रासुक विहार है ।

६. अहो भगवन् ! * सरिसव आपके भक्ष्य है या अभक्ष्य है ? हे सोमिल ! सरिसव मेरे भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी है । ब्राह्मणशास्त्रों में सरिसव दो प्रकार की कही गई है– मित्रसरिसव और धानसरिसव । मित्रसरिसव के तीन भेद हैं– १ एक साथ जन्मे हुए, २ एक साथ बड़े हुए, ३ एक साथ खेले हुए । यह तीन प्रकार की मित्रसरिसव तो अभक्ष्य है । धानसरिसव के २ भेद हैं– शस्त्रपरिणत और अशस्त्रपरिणत । अशस्त्रपरिणत (अग्नि आदि शस्त्र से जो निर्जीव नहीं हुए हैं) तो श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए अभक्ष्य है । शस्त्रपरिणत के दो भेद– एषणीय (निर्दोष) और अनेषणीय (सदोष), अनेषणीय तो अभक्ष्य है । एषणीय के दो भेद– जांची हुई (मांगी हुई) और अजांची हुई (नहीं मांगी हुई) । अजांची हुई तो अभक्ष्य है । जांची हुई के दो भेद– मिली हुई और नहीं मिली हुई । नहीं मिली हुई तो अभक्ष्य है और मिली हुई भक्ष्य है ।

७. अहो भगवन् ! + मास आपके भक्ष्य है या अभक्ष्य

** 'सरिसव' यह प्राकृत भाषा का श्लिष्ट शब्द है। इसकी संस्कृत छाया दो होती हैं– 'सर्षप' और 'सदृशवयाः', सर्षप का अर्थ है सरसों और 'सदृशवया' का अर्थ है मित्र।*

+ मास, यह प्राकृत का श्लिष्ट शब्द है। इसकी संस्कृत छाया दो होती हैं– माष और मास। 'माष' का अर्थ है उड़द और 'मास' का अर्थ है महीना–श्रावण, भादरवा आदि।

है ? हे सोमिल ! मास भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी है । अहो भगवन् ! इसका क्या कारण है ? हे सोमिल ! तुम्हारे ब्राह्मण शास्त्रों में 'मास' दो प्रकार के कहे गये हैं– द्रव्यमास और कालमास। (कालमास तो श्रावण से लेकर आषाढ़ तक १२ मास (महीने) होते हैं, वे अभक्ष्य हैं । द्रव्यमास के दो भेद हैं– अर्थमास और धान्यमास । सोना, चांदी तोलने के मासे (बाट) को अर्थमास कहते हैं, यह अभक्ष्य हैं । धानमास धानसरिसव की तरह कह देना चाहिए ।

८. अहो भगवन् ! कुलत्था आपके भक्ष्य है या अभक्ष्य है ? हे सोमिल ! कुलत्था भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी है । अहो भगवन् ! इसका क्या कारण ? हे सोमिल ! तुम्हारे ब्राह्मणशास्त्रों में कुलत्था दो प्रकार की कही गई है– स्त्रीकुलत्था (कुलीन स्त्री) और धानकुलत्था । स्त्रीकुलत्था के तीन भेद हैं– १ कुलकन्या, २ कुलवधू, ३ कुलमाता । ये तीनों श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए अभक्ष्य हैं । धानकुलत्था (कुलथी नाम का एक धान) धानसरिसव की तरह कह देना चाहिए ।

९. अहो भगवन् ! आप एक हैं या दो हैं ? आप अक्षय, अव्यय, अवस्थित हैं या अनेक भूत वर्तमान भावी परिणामों के योग्य हैं ? हे सोमिल ! मैं एक भी हूं, दो भी हूं यावत् अनेक भूत वर्तमान भावी परिणामों के योग्य भी हूं । अहो भगवन् ! इसका क्या कारण ? हे सोमिल ! मैं द्रव्य से एक हूं, ज्ञान दर्शन रूप से दो हूं । आत्मप्रदेश की अपेक्षा अक्षय, अव्यय, अवस्थित हूं, उपयोग की अपेक्षा अनेक भूत वर्तमान भावी तीनों ही काल में

परिणामों के योग्य हूं ।

इस प्रकार भगवान् से अपने प्रश्नों का उत्तर सुन कर सोमिल ब्राह्मण प्रतिबोध को प्राप्त हुए । भगवान् को वन्दना नमस्कार कर श्रावक के बारह व्रत अंगीकार किये । बहुत वर्षों तक श्रावकपना पाल कर वहां से काल कर देवलोक में उत्पन्न होंगे और वहां से चवकर महाविदेह क्षेत्र में मनुष्य के भव में दीक्षा लेकर सभी कर्मों का क्षय कर मोक्ष जायेंगे ।

३०. बारह द्वार का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक उन्नीसवां, उद्देशा दसवां, शतक बीसवां, उद्देशा पहला)

बारह द्वारों के नाम इस प्रकार हैं– १ स्याद्द्वार, २ लेश्याद्वार, ३ दृष्टिद्वार, ४ ज्ञानद्वार, ५ योगद्वार, ६ उपयोगद्वार, ७ किमाहारद्वार, ८ प्राणातिपातादिद्वार, ९ उत्पादद्वार, १० स्थितिद्वार, ११ समुद्घातद्वार, १२ उद्वर्तनाद्वार ।

१- स्याद्द्वार– अहो भगवन् ! क्या दो तीन चार पांच पृथ्वीकायिक जीव इकट्ठे होकर एक साधारण शरीर बांधते हैं, बांधने के बाद आहार करते हैं, पीछे परिणमाते हैं और उसके बाद शरीर का बंध करते हैं ? हे गौतम ! ऐसा नहीं करते हैं, क्योंकि पृथ्वीकायिक जीव प्रत्येक आहारी (अलग अलग आहार करने वाले) हैं और प्रत्येक परिणामी (अलग अलग परिणमाने वाले) हैं । इसलिए वे अलग अलग शरीर बांधते हैं, फिर आहार करते हैं,

परिणमाते हैं और अपना अपना शरीर बांधते हैं ।*

२-लेश्याद्वार- अहो भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीवों में कितनी लेश्याएं होती हैं ? हे गौतम ! चार लेश्या होती हैं- कृष्ण, नील, कापोत और तेजोलेश्या ।

३- दृष्टिद्वार- क्या पृथ्वीकायिक जीव सम्यग्दृष्टि हैं या मिथ्यादृष्टि हैं या सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्रदृष्टि) हैं ? हे गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव सम्यग्दृष्टि नहीं हैं, मिश्रदृष्टि नहीं हैं किन्तु मिथ्यादृष्टि हैं ।

** क्या कदाचित् अनेक पृथ्वीकायिक मिलकर साधारण शरीर बांधते हैं, इसके बाद विशेष आहार करते हैं, परिणमाते हैं और पीछे शरीर का विशेष बन्ध करते हैं ? यह प्रश्न है। इसका आशय यह है कि सामान्य रूप से सब संसारी जीवों को प्रतिसमय निरन्तर आहारग्रहण (पुद्गलग्रहण) होता है, इसलिए प्रथम सामान्य शरीरबंध के समय भी आहार तो चालू ही है तथापि पहले शरीर बांधने का और पीछे आहार करने का जो प्रश्न किया गया है वह विशेष आहार की अपेक्षा से जानना चाहिए। जीव उत्पत्तिसमय में प्रथम ओज-आहार करता है, पीछे शरीर स्पर्श द्वारा लोम-आहार करता है, उसे परिणमाता है और उसके बाद में विशेष विशेष शरीरबंध करता है, यह प्रश्न है।*

इसके उत्तर में कहा गया है कि पृथ्वीकायिक जीव अलग अलग आहार करते हैं और अलग अलग परिणमाते हैं, इसलिए वे अलग अलग शरीर बांधते हैं, साधारणशरीर नहीं बांधते हैं। इसके बाद वे विशेष आहार, विशेष परिणाम और विशेष शरीरबंध करते हैं।

४- ज्ञानद्वार– अहो भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव ज्ञानी हैं या अज्ञानी हैं ? हे गौतम ! वे ज्ञानी नहीं, अज्ञानी हैं, उनको नियमा (अवश्य) दो अज्ञान होते हैं– मति-अज्ञान, श्रुत-अज्ञान ।

५- योगद्वार– अहो भगवन् ! क्या पृथ्वीकायिक जीव मनयोगी हैं या वचनयोगी हैं या काययोगी हैं ? हे गौतम ! वे मनयोगी नहीं हैं, वचनयोगी नहीं हैं, काययोगी हैं ।

६- उपयोगद्वार– अहो भगवन् ! क्या पृथ्वीकायिक जीव साकार (ज्ञान) उपयोगी हैं या निराकार (दर्शन) उपयोगी हैं ? हे गौतम ! पृथ्वीकायिक जीव साकारोपयोगी भी हैं और निराकारोपयोगी भी हैं ।

७- किमाहारद्वार– + अहो भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव कैसा आहार करते हैं ? हे गौतम ! द्रव्य से अनन्तप्रदेशी पुद्गलों का आहार करते हैं, क्षेत्र से असंख्यात आकाश प्रदेशों में रहे हुए पुद्गलों का आहार करते हैं, काल से जघन्य, मध्यम या उत्कृष्ट स्थिति वाले पुद्गलों का आहार करते हैं और भाव से वर्ण गन्ध रस स्पर्श वाले पुद्गलस्कन्धों का आहार करते हैं । व्याघात की अपेक्षा कदाचित् तीन दिशा का, कदाचित् चार दिशा का और कदाचित् ५ दिशा का आहार लेते हैं, निर्व्याघात की अपेक्षा नियमा छह दिशा का आहार लेते हैं ।

अहो भगवन् ! क्या पृथ्वीकायिक जीव जो आहार करते हैं,

+ किमाहार का खुलासा श्री पन्नवणासूत्र के थोकड़ों के तीसरा भाग में है। (श्री पन्नवणासूत्र के २८ वें पद का पहला उद्देशा)।

उसका चय (संग्रह) होता है ? चय हुए आहार का असार भाग बाहर निकलता है और सार भाग इन्द्रियपने परिणमता है ? हां, गौतम ! चय होता है यावत् सार भाग इन्द्रियपने परिणमता है । अहो भगवन् ! क्या उन जीवों को 'मैं आहार करता हूं' इस प्रकार की संज्ञा, प्रज्ञा, मन और वचन होता है ? हे गौतम ! उन जीवों को इस प्रकार की संज्ञा, प्रज्ञा, मन, वचन नहीं होता है, तो भी वे आहार तो करते ही हैं ।

अहो भगवन् ! क्या उन जीवों को 'हम इष्ट या अनिष्ट स्पर्श का अनुभव करते हैं' ऐसी संज्ञा, प्रज्ञा, मन, वचन होता है ? हे गौतम ! संज्ञा, प्रज्ञा, मन, वचन नहीं होता तो भी अनुभव तो करते ही हैं ।

८- प्राणातिपातादिद्वार— अहो भगवन् ! क्या पृथ्वीकायिक जीव प्राणातिपात, मृषावाद यावत् मिथ्यादर्शनशल्य, इन अठारह पापस्थानों में रहे हुए हैं ? हां गौतम ! प्राणातिपात, मृषावाद * यावत् मिथ्यादर्शनशल्य इन अठारह पापस्थानों में रहे हुए हैं ।

९- उत्पादद्वार— अहो भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव कहां से आकर उत्पन्न होते हैं ? हे गौतम ! तिर्यंच, मनुष्य और देवो से आकर उत्पन्न होते हैं । +

१०- स्थितिद्वार— अहो भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीवों व स्थिति कितनी है ? हे गौतम ! जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट २

** पृथ्वीकायिक जीवों में वचनादि का अभाव है तथापि मृषावाद आदि अविरति के कारण वे मृषावाद आदि में रहे हुए हैं, ऐसा जानना चाहि*

+ श्रीपन्नवणासूत्र के थोकड़ों का प्रथम भाग में विशेष खुलासा

हजार वर्ष की है।

११- समुद्घातद्वार– अहो भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीवों में कितने समुद्घात होते हैं ? हे गौतम ! तीन समुद्घात होते हैं– वेदनासमुद्घात, कषायसमुद्घात और मारणान्तिकसमुद्घात ।

अहो भगवन् ! क्या पृथ्वीकायिक जीव मारणान्तिकसमुद्घात करके मरते हैं या मारणान्तिकसमुद्घात किये बिना मरते हैं । हे गौतम ! मारणान्तिकसमुद्घात करके भी मरते हैं और समुद्घात किये बिना भी मरते हैं ।

१२- उद्वर्तनाद्वार– अहो भगवन् ! पृथ्वीकायिक जीव मर कर कहां जाते हैं ? हे गौतम ! तिर्यंच और मनुष्य इन दो गति में जाते हैं ।

१३- जिस तरह पृथ्वीकाय का कहा, उसी तरह अप्काय का कह देना, किन्तु इतनी विशेषता है कि अप्काय की उत्कृष्ट स्थिति सात हजार वर्ष की ।

१४- जिस तरह पृथ्वीकाय का कहा, उसी तरह अग्निकाय का कह देना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि अग्निकाय के जीव तिर्यंच और मनुष्य में से आकर उत्पन्न होते हैं । स्थिति तीन अहोरात्र की है । अग्निकाय से निकल कर तिर्यंच में ही उत्पन्न होते हैं , इनके तीन लेश्या होती हैं ।

१५- जिस तरह अग्निकाय का कहा उसी तरह वायुकाय का कह देना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि वायुकाय की उत्कृष्ट स्थिति तीन हजार वर्ष की होती है । समुद्घात चार होते हैं ।

१६- जिस तरह पृथ्वीकाय का कहा उसी तरह वनस्पतिकाय का कह देना, किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्त वनस्पतिकायिक जीव इकट्ठे होकर एक साधारण शरीर बांधते हैं । वनस्पतिकायिक जीव की उत्कृष्ट स्थिति दस हजार वर्ष की होती है । इनका आहार नियमा + छह दिशा का होता है ।

अहो भगवन् ! क्या द्वीन्द्रिय जीव दो तीन चार पांच इकट्ठे होकर साधारण शरीर बांधते हैं ? इसके बाद आहार करते हैं ? इसको परिणमाते हैं ? और पीछे विशिष्ट शरीर बांधते हैं ? हे गौतम ! यह बात नहीं है, क्योंकि द्वीन्द्रिय जीव अलग-अलग आहार करने वाले और उसको भिन्न-भिन्न रूप से परिणमाने वाले होते हैं । इसलिए वे अलग-अलग शरीर बांधते हैं और अलग-अलग आहार करते हैं, अलग-अलग रूप से परिणमाते हैं और पीछे विशिष्ट शरीर बांधते हैं ।

१७- तीन विकलेन्द्रिय में तीन लेश्या पाई जाती हैं और पंचेन्द्रिय में छह लेश्या पाई जाती हैं ।

+ वनस्पतिकाय का आहार नियमा छह दिशा का होता है, ऐसा जो कहा गया है, उसका आशय समझ में नहीं आता, क्योंकि लोकान्त में रही हुई वनस्पतिकाय को तीन, चार अथवा पांच दिशा का भी आहार संभव है। परन्तु बादर निगोद (बादर साधारण वनस्पतिकाय) की अपेक्षा यदि यह सूत्र हो तो नियमा छह दिशा का आहार घटित हो सकता है। क्योंकि वह लोक के मध्य भाग में रही हुई होने के कारण उसको नियमा छह दिशा का आहार होता है।

१८- तीन विकलेन्द्रिय में दो दृष्टि पाई जाती हैं– समदृष्टि और मिथ्यादृष्टि । पंचेन्द्रिय में तीनों दृष्टि पाई जाती हैं– समदृष्टि, मिथ्यादृष्टि और मिश्रदृष्टि ।

१९- विकलेन्द्रिय में दो ज्ञान, दो अज्ञान पाये जाते हैं । पंचेन्द्रिय में चार ज्ञान, तीन अज्ञान पाये जाते हैं ।

२०- विकलेन्द्रिय में दो योग पाये जाते हैं– काया और वचन का । पंचेन्द्रिय में तीनों योग (मन, वचन और काया के) पाये जाते हैं ।

२१- तीन विकलेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय में दो उपयोग पाये जाते हैं– साकारोपयोग, निराकारोपयोग ।

२२- तीन विकलेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय में नियमा छह दिशा का आहार लेते हैं ।

२३- तीन विकलेन्द्रिय में १८ ही पाप पाये जाते हैं, पंचेन्द्रिय में १८ पाप की भजना है ।

२४- तीन विकलेन्द्रिय में मनुष्य और तिर्यंच से आकर उत्पन्न होते हैं । पंचेन्द्रिय में चारों गति से जाव सर्वार्थसिद्ध तक के आकर उत्पन्न होते हैं ।

२५- द्वीन्द्रिय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट १२ वर्ष की, त्रीन्द्रिय की जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट ४९ दिन की, चतुरिन्द्रिय की जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट ६ महीने की, पंचेन्द्रिय की जघन्य अन्तर्मुहूर्त की, उत्कृष्ट ३३ सागर की है ।

२६- तीन विकलेन्द्रिय में तीन तीन समुद्घात पाई जाती है । पंचेन्द्रिय में ६ समुद्घात पाई जाती हैं, मारणान्तिकसमुद्घात

करके समोहिया और असमोहिया दोनों मरण मरते हैं ।

२७- तीन विकलेन्द्रिय मर कर दो गति में जाते हैं– मनुष्यगति और तिर्यंचगति । पंचेन्द्रिय मर कर चारों गति में जाव सर्वार्थसिद्ध तक जाते हैं ।

२८- अल्पाबोधद्वार– सबसे थोड़े पंचेन्द्रिय, उससे चतुरिन्द्रिय विशेषाधिक, उससे त्रीन्द्रिय विशेषाधिक, उससे द्वीन्द्रिय विशेषाधिक, उससे तेउकाय असंख्यातगुणा, उससे पृथ्वीकाय विशेषाधिक, उससे अप्काय विशेषाधिक, उससे वायुकाय विशेषाधिक, उससे वनस्पतिकाय अनन्तगुणा हैं ।

३१. अवगाहना के ४४ बोलों की अल्पाबोध का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक उन्नीसवां, उद्देशा तीसरा)

१-अहो भगवन् ! सूक्ष्म, बादर, पर्याप्त अपर्यात पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय की जघन्य और उत्कृष्ट अवगाहना किसकी किससे कम, ज्यादा और विशेषाधिक हैं ? हे गौतम ! १- सबसे थोड़ी सूक्ष्म निगोद के अपर्याप्ता की जघन्य अवगाहना, २- उससे सूक्ष्म वायुकाय के अपर्याप्ता की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी, ३ उससे सूक्ष्म तेउकाय के अपर्याप्ता की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी, ४-उससे सूक्ष्म अप्काय के अपर्याप्ता की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी, ५- उससे सूक्ष्म पृथ्वीकाय के अपर्याप्ता की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी, ६- उससे बादर

वायुकाय के अपर्याप्ता की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी, ७- उससे बादर तेउकाय के अपर्याप्ता की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी, ८- उससे बादर अप्काय के अपर्याप्ता की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी, ९- उससे बादर पृथ्वीकाय के अपर्याप्ता की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी, १०- ११- उससे प्रत्येक शरीरी बादर वनस्पतिकाय और बादर निगोद के अपर्याप्ता की जघन्य अवगाहना आपस में तुल्य, असंख्यातगुणी, १२- उससे सूक्ष्म निगोद के पर्याप्ता की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी, १३- उससे सूक्ष्म निगोद के अपर्याप्ता की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक, १४- उससे सूक्ष्म निगोद के पर्याप्ता की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक, १५- उससे सूक्ष्म वायुकाय के पर्याप्ता की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी, १६- उससे सूक्ष्म वायुकाय के अपर्याप्ता की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक, १७- उससे सूक्ष्म वायुकाय के पर्याप्ता की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक, १८- उससे सूक्ष्म तेउकाय के पर्याप्ता की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी, १९- उससे सूक्ष्म तेउकाय के अपर्याप्ता की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक, २०- उससे सूक्ष्म तेउकाय के पर्याप्ता की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक, २१- उससे सूक्ष्म अप्काय के पर्याप्ता की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी, २२- उससे सूक्ष्म अप्काय के अपर्याप्ता की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक, २३- उससे सूक्ष्म अप्काय के पर्याप्ता की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक, २४- उससे सूक्ष्म पृथ्वीकाय के पर्याप्ता की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी, २५- उससे सूक्ष्म पृथ्वीकाय के अपर्याप्ता की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक, २६- उससे सूक्ष्म पृथ्वीकाय के

पर्याप्ता की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक, * २७- उससे बादर वायुकाय के पर्याप्ता की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी, २८- उससे बादर वायुकाय के अपर्याप्ता की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक, २९- उससे बादर वायुकाय के पर्याप्ता की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक, ३०- उससे बादर तेउकाय के पर्याप्ता की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी, ३१- उससे बादर तेउकाय के अपर्याप्ता की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक, ३२- उससे बादर तेउकाय के पर्याप्ता की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक, ३३- उससे बादर अप्काय के पर्याप्ता की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी, ३४- उससे बादर अप्काय के अपर्याप्ता की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक, ३५- उससे बादर अप्काय के पर्याप्ता की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक, ३६- उससे बादर पृथ्वीकाय के पर्याप्ता की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी, ३७- उससे बादर पृथ्वीकाय के अपर्याप्ता की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक, ३८- उससे बादर पृथ्वीकाय के पर्याप्ता की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक ३९- उससे बादर निगोद के पर्याप्ता की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी ४०- उससे बादर निगोद के अपर्याप्ता की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक,

---

** पन्द्रहवें बोल से लेकर छब्बीसवें बोल तक १२ बोल चार सूक्ष्म स्थावर के कहे गये हैं, इसी तरह सत्ताईसवें बोल से लेकर अड़तीसवें बोल तक १२ बोल बादर के हैं। ३९ वें बोल से लेकर ४१ वें बोल तक तीन बोल बादर निगोद के हैं। ४२ वें बोल से लेकर ४४ वें बोल तक तीन बोल प्रत्येक शरीरी बादर वनस्पतिकाय के हैं।*

४१- उससे बादर निगोद के पर्याप्ता की उत्कृष्ट अवगाहना विशेषाधिक, ४२- उससे प्रत्येक शरीरी बादर वनस्पतिकाय के पर्याप्ता की जघन्य अवगाहना असंख्यातगुणी, ४३- उससे प्रत्येक शरीरी बादर वनस्पतिकाय के अपर्याप्ता की उत्कृष्ट अवगाहना असंख्यातगुणी, ४४- उससे प्रत्येक शरीरी बादर वनस्पति के पर्याप्ता की उत्कृष्ट अवगाहना असंख्यातगुणी है।

३२. सूक्ष्म बादर का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक उन्नीसवां, उद्देशा तीसरा)

१- अहो भगवन् ! पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय इन पांच काय में सबसे सूक्ष्म कौन है ? हे गौतम ! वनस्पतिकाय सबसे सूक्ष्म है * । चार काया में वायुकाय सूक्ष्म है, तीन काया में तेउकाय सूक्ष्म है, दो काया में अप्काय सूक्ष्म है ।

२- अहो भगवन् ! पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय इन पांच काय में सबसे बादर कौन है ? हे गौतम ! वनस्पतिकाय सबसे बादर है । चार काय में पृथ्वीकाय सबसे बादर है । तीन काय में अप्काय सबसे बादर है। दो काय में तेउकाय बादर है।

३- अहो भगवन् ! पृथ्वीकाय का शरीर कितना बड़ा है ? हे गौतम ! सबसे छोटा शरीर सूक्ष्म वनस्पतिकाय का है ।

** सूक्ष्म वनस्पतिकाय की अपेक्षा से वनस्पतिकाय सबसे सूक्ष्म है और प्रत्येक वनस्पति की अपेक्षा सबसे अधिक बादर हैं।*

उससे सूक्ष्म वायुकाय का शरीर असंख्यातगुणा बड़ा है । उससे सूक्ष्म तेउकाय का शरीर असंख्यातगुणा बड़ा है । उससे सूक्ष्म अप्काय का शरीर असंख्यातगुणा बड़ा है । उससे सूक्ष्म पृथ्वीकाय का शरीर असंख्यातगुणा बड़ा है । उससे बादर वायुकाय का शरीर असंख्यातगुणा बड़ा है । उससे बादर तेउकाय का शरीर असंख्यातगुणा बड़ा है । उससे बादर अप्काय का शरीर असंख्यातगुणा बड़ा है । उससे बादर पृथ्वीकाय का शरीर असंख्यातगुणा बड़ा है ।

४- अहो भगवन् ! पृथ्वीकाय के शरीर की कितनी बड़ी अवगाहना है ? हे गौतम ! जिस प्रकार चक्रवर्ती सम्राट की चन्दन घिसने वाली दासी, जो तीसरे चौथे आरे में उत्पन्न हुई हो, जवान बलवान् नीरोग और स्वस्थ तथा चतुर हो और वज्र हीरे को चिमटी से मसल कर चूर्ण करने वाली हो । वह चूर्ण पीसने की वज्रशिला पर वज्र के लोढे (पत्थर) से पृथ्वीकाय के पिण्ड को २१ बार पीसे तो भी कितने ही पृथ्वीकायिक जीवों का उस शिला और लोढे (बांटने के पत्थर) से मात्र स्पर्श होता है और कितनों ही का स्पर्श भी नहीं होता है कितने ही जीवों का संघट्टा (संघर्ष) होता है और कितनों ही का संघट्टा भी नहीं होता । कितनों ही को पीड़ा होती है और कितनों ही को पीड़ा भी नहीं होती है । कितनेक मर जाते हैं और कितनेक नहीं मरते । कितनेक पीसे जाते हैं और कितनेक नहीं पीसे जाते । पृथ्वीकाय की इतनी सूक्ष्म अवगाहना है ।

५- अहो भगवन् ! जब पृथ्वीकाय के जीव दबते हैं तो उन्हें कैसी पीड़ा का अनुभव होता है ? हे गौतम ! जिस प्रकार

कोई कला में पारंगत बलवान् जवान पुरुष किसी जीर्ण शरीर वाले, दुर्बल रोगी बूढ़े आदमी के सिर पर अपने दोनों हाथों से चोट मारे तो हे गौतम ! उस बूढे को कैसी पीड़ा होती है ? अहो भगवन् ! अत्यन्त अनिष्ट अप्रिय पीड़ा होती है। हे गौतम ! इसी तरह जब पृथ्वीकाय के जीव पैर आदि के नीचे दबते हैं तब उनको उस बूढे पुरुष की अपेक्षा अधिक अनिष्ट, अप्रिय और अमनोज्ञ (अनगमती) पीड़ा होती है ।

जिस प्रकार पृथ्वीकाय की पीड़ा का कहा, उसी प्रकार अप्काय, तेउकाय वायुकाय और वनस्पतिकाय की पीड़ा का भी कह देना चाहिए । पांचों स्थावर इस प्रकार की पीड़ा का अनुभव करते हैं ।

३३. दस दिशाओं का थोकड़ा

(भगवतीसूत्र, शतक दसवां, उद्देशा पहला)

१- अहो भगवन् ! दिशाएं कितनी कही गई हैं ? हे गौतम ! दिशाएं दस कही गई हैं– १ पूर्व, २ पूर्व-दक्षिण (अग्निकोण), ३ दक्षिण, ४ दक्षिण-पश्चिम (नैऋतकोण), ५ पश्चिम, ६ पश्चिम-उत्तर (वायव्यकोण), ७ उत्तर, ८ उत्तर-पूर्व (ईशानकोण) ९ ऊर्ध्वदिशा, १० अधोदिशा ।

२- अहो भगवन् ! इन दिशाओं के क्या-क्या नाम कहे गये हैं ? हे गौतम ! दस दिशाओं के नाम इस प्रकार हैं –

इंदा अग्गेयी जमा य नेरई वारुणी य वायव्वा ।
सोमा ईसाणी य विमला य तमा य बोद्धव्वा ।।

अर्थ- १ * इंदा-ऐन्द्री (पूर्व), २ अग्गेयी-आग्नेयी (अग्निकोण), ३- जमा-याम्या (दक्षिण), ४ नेरई-नैऋती (नैऋतकोण), ५- वारुणी (पश्चिम), ६ वायव्वा-वायव्य (वायव्यकोण), ७ सोमा (उत्तर), ८ ईसाणी-ऐशानी (ईशानकोण), ९ विमला (ऊर्ध्वदिशा), १० तमा (अधोदिशा) ।

३- अहो भगवन् ! ये दस दिशाएं कहां से निकली हैं ? हे गौतम ! मेरु पर्वत के मध्य भाग से निकली हैं अर्थात् १८०० योजन का यह तिर्च्छालोक है। इसके बीच में और मेरुपर्वत के भी ठीक मध्यभाग में ८ रुचक प्रदेश हैं, चार ऊपर की तरफ हैं और चार नीचे की तरफ हैं । यहां से दस दिशाएं निकली हैं– पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण ये चार दिशाएं दो-दो प्रदेशी निकली हैं और आगे दो-दो प्रदेश की वृद्धि होती हुई लोकान्त या अलोक में चली गई हैं । लोक में असंख्यात प्रदेश वृद्धि हुई है और अलोक में अनन्त प्रदेश वृद्धि हुई है।

इनका आकार गाड़ी के ओढण (झूसण) या अंगुली के बेडुक के समान है । अग्निकोण, नैऋतकोण, वायव्यकोण, ईशानकोण ये चार विदिशाएं एक एक प्रदेशी निकली हैं और

** पूर्वदिशा का स्वामी इन्द्र है, इसलिए इसका नाम–इंदा (ऐन्द्री) कहा गया है। इसी प्रकार अग्नि, यम, नैऋति, वरुण, वायु, सोम और ईशान देव स्वामी हैं, इसलिए इन दिशाओं के आग्नेयी आदि गुणनिष्पन्न नाम कहे गये हैं। प्रकाशयुक्त होने से ऊर्ध्वदिशा को विमला और अन्धकारयुक्त होने से अधोदिशा को 'तमा' कहा गया है।*

लोकान्त तक चली गई हैं, इनका आकार मोतियों की लड़ के समान है । ऊर्ध्वदिशा और अधोदिशा चार-चार प्रदेशी निकली हैं और लोकान्त तक या अलोक में चली गई हैं ।

४- अहो भगवन्! पूर्वदिशा में क्या जीव है, या जीव का देश है, या जीव का प्रदेश है ? अजीव है, या अजीव का देश है, या अजीव का प्रदेश है ? हे गौतम ! जीव है, जीव का देश है, जीव का प्रदेश है, अजीव है, अजीव का देश है, अजीव का प्रदेश है । अहो भगवन्! जीव है तो क्या एकेन्द्रिय हैं, द्वीन्द्रिय हैं, त्रीन्द्रिय हैं, चतुरिन्द्रिय हैं, पंचेन्द्रिय हैं, अनिन्द्रिय हैं ? हे गौतम ! एकेन्द्रिय भी हैं यावत् अनिन्द्रिय भी हैं । इन छह के देश भी हैं और इन छह के प्रदेश भी हैं । ये जीव संबंधी १८ भांगे हुए । अहो भगवन्! अजीव है तो क्या धर्मास्तिकाय का देश है या प्रदेश है ? अधर्मास्तिकाय का देश है या प्रदेश है ? आकाशास्तिकाय का देश है या प्रदेश है ? हे गौतम ! धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय का एक, एक देश है और बहुत, बहुत प्रदेश हैं । ये ६ भांगे हुए और सातवां अद्धासमय, ये ७ भांगे अरूपी अजीव के हुए । स्कन्ध, देश, प्रदेश, परमाणु ये चार भांगे रूपी अजीव (पुद्गल) के हुए । ये अजीव के ११ भांगे हुए । जीव के १८ और अजीव के ११ , ये सब मिला कर २९ भांगे हुए । चारों ही दिशा में उनतीस-उनतीस भांगे कह देना ।

चारों ही विदिशा में अड़तीस-अड़तीस भांगे कहना । भांगे इस तरह से हैं- १ सव्वे वि ताव हुज्जा एगिंदिय देसा, (बहुत एकेन्द्रिय जीव के बहुत देश), १ बहुत एकेन्द्रिय जीवों के बहुत देश

और एक द्वीन्द्रिय जीव का एक देश, २ बहुत एकेन्द्रिय जीव के बहुत देश और एक द्वीन्द्रिय जीव के बहुत देश, ३ बहुत एकेन्द्रिय जीवों के बहुत देश और बहुत द्वीन्द्रिय जीवों के बहुत देश । इस तरह त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय और अनिन्द्रिय के तीन-तीन भांगे कह देना, ये देश संबंधी १६ भांगे हुए ।

अब प्रदेश संबंधी ११ भांगे कहे जाते हैं– १ सव्वे वि ताव हुज्जा एगिंदिय पएसा (बहुत एकेन्द्रिय जीवों के बहुत प्रदेश), १ बहुत एकेन्द्रिय जीवों के बहुत प्रदेश और एक द्वीन्द्रिय जीव के बहुत प्रदेश, २ बहुत एकेन्द्रिय जीवों के बहुत प्रदेश और बहुत द्वीन्द्रिय जीवों के बहुत प्रदेश, इसी तरह त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, अनिन्द्रिय के दो-दो भांगे कह देना, ये ११ भांगे हुए । देश संबंधी १६ भांगे और प्रदेश संबंधी ११ भांगे, ये सब मिलाकर जीव संबंधी २७ भांगे हुए । जिस तरह दिशा में अजीव संबंधी ११ भांगे कहे, उसी तरह विदिशा में भी कह देना । इस तरह जीव के २७ और अजीव के ११ ये सब मिला कर के ३८ भांगे हुए । चारों विदिशा में अड़तीस, अड़तीस भांगे कह देना । ऊर्ध्वदिशा में भी ३८ भांगे कह देना और अधोदिशा में ३७ (अद्धासमय को छोड़ कर) भांगे कह देना ।

श्री भगवती जी सूत्र के ग्यारहवें शतक के दसवें उद्देशे में तीन लोक में चार प्रदेशों के भांगों का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं–

जिस तरह पूर्वदिशा में २९ भांगे कहे उसी तरह समुच्चय लोक, अधोलोक और तिच्छर्लोक में उनतीस-उनतीस भांगे कह

देना । ऊर्ध्वलोक में अट्ठाईस (काल को छोड़ कर) भांगे कहना ।

समुच्चय लोक के एक आकाशप्रदेश पर भांगा पावे ३२ (११ देश का, १२ प्रदेश का, ९ अजीव का)– १ सव्वे वि ताव हुज्जा एगिंदिय देसा । १ बहुत एकेन्द्रिय जीवों के बहुत देश, एक द्वीन्द्रिय जीव का एक देश, २ बहुत एकेन्द्रिय जीवों के बहुत देश, बहुत द्वीन्द्रिय जीवों के बहुत देश । इसी तरह त्रीन्द्रिय के २, चतुरिन्द्रिय के २, पंचेन्द्रिय के २, अनिन्द्रिय के २, ये ११ भांगे देश संबंधी हुए । १ सव्वे वि ताव हुज्जा एगिंदिय पएसा । १ बहुत एकेन्द्रिय जीवों के बहुत प्रदेश, एक द्वीन्द्रिय जीव के बहुत प्रदेश, २ बहुत एकेन्द्रिय जीवों के बहुत प्रदेश, बहुत द्वीन्द्रिय जीवों के बहुत प्रदेश । इसी तरह त्रीन्द्रिय के २, चतुन्द्रिय के २, पंचेन्द्रिय के २ भांगे कह देना । अनिन्द्रिय के ३ भांगे– १ बहुत एकेन्द्रिय जीवों के बहुत प्रदेश, एक अनिन्द्रिय का १ प्रदेश, २ बहुत एकेन्द्रिय जीवों के बहुत प्रदेश, एक अनिन्द्रिय के बहुत प्रदेश, ३ बहुत एकेन्द्रिय जीवों के बहुत प्रदेश, बहुत अनिन्द्रिय जीवों के बहुत प्रदेश, ये प्रदेश संबंधी १२ भांगे हुए ।

धर्मास्तिकाय का स्कन्ध नहीं है, २ धर्मास्तिकाय का एक देश है, एक प्रदेश है। ३ अधर्मास्तिकाय का स्कन्ध नहीं है, ४ अधर्मास्तिकाय का एक देश है, एक प्रदेश है, ५ अद्धासमय है, ये ५ अरूपी के और १ स्कन्ध, २ देश, ३ प्रदेश, ४ परमाणु , ये चार रूपी के, कुल ९ भांगे अजीव के हुए । ११ देश के, १२ प्रदेश के, ९ अजीव के ये सब मिला कर ३२ भांगे हुए । ३२ भांगे समुच्चय लोक के आकाशप्रदेश में, ३२ भांगे अधोलोक के आकाशप्रदेश में,

३२ भांगे तिर्च्छालोक के आकाशप्रदेश में और ३१ भांगे (अद्धासमय को छोड़ कर) ऊर्ध्वलोक के आकाशप्रदेश में हैं । ये कुल १२७ भांगे हुए ।

भगवतीसूत्र के १६ वें शतक के आठवें उद्देशे में २१० चरमान्त के भांगे का थोकड़ा चलता है सो कहते हैं –

७ नारकी, १२ देवलोक, ९ ग्रैवेयक, ५ अनुत्तर विमान, १ इसीपब्भारापुढवी (ईषत्प्राग्भारापृथ्वी), १ लोक, इन ३५ बोलों के ऊपर का चरमान्त, नीचे का चरमान्त, चारों दिशाओं का चरमान्त, ये २१० (३५ X ६ = २१०) बोल हुए ।

रत्नप्रभा पृथ्वी के ऊपर के चरमान्त में भांगा पावे ३८ (विदिशा में कहे सो कह देना) शेष छह नारकी के ऊपर के चरमान्त में, ७ नारकी के नीचे के चरमान्त में, १२ देवलोकों के ऊपर और नीचे के चरमान्त में, इन ३७ बोलों में (६ + ७ + २४ = ३७) भांगा पावे । तेतीस तेतीस, (१२ देश के, ११ प्रदेश के, १० अजीव के) । १ सव्वे वि ताव हुज्जा एगिंदिय देसा, १ बहुत एकेन्द्रिय जीवों के बहुत देश, एक द्वीन्द्रिय का एक देश, बहुत एकेन्द्रिय जीवों के बहुत देश, बहुत द्वीन्द्रिय जीवों के बहुत देश, इसी तरह त्रीन्द्रिय के २ भांगे और चतुरिन्द्रिय के २ भांगे कह देना । पंचेन्द्रिय के ३ भांगे कहना– १ बहुत एकेन्द्रिय जीवों के बहुत देश, एक पंचेन्द्रिय का एक देश, २ बहुत एकेन्द्रिय जीवों के बहुत देश, एक पंचेन्द्रिय के बहुत देश ३ बहुत एकेन्द्रिय जीवों के बहुत देश, बहुत पंचेन्द्रिय जीवों के बहुत देश । अनिन्द्रिय के २ भांगे – एक बहुत एकेन्द्रियों के बहुत देश, एक अनिन्द्रिय का एक देश , २

बहुत एकेन्द्रियों के बहुत देश, बहुत अनिन्द्रियों के बहुत देश । ये देशसंबंधी १२ भांगे हुए । १ सव्वे वि ताव हुज्जा एगिंदिया पएसा, १ बहुत एकेन्द्रिय जीवों के बहुत प्रदेश, १ द्वीन्द्रिय के बहुत प्रदेश, २ बहुत एकेन्द्रिय जीवों के बहुत प्रदेश, बहुत द्वीन्द्रिय जीवों के बहुत प्रदेश । इसी तरह त्रीन्द्रिय के २, चतुरिन्द्रिय के २, पंचेन्द्रिय के २ और अनिन्द्रिय के २, ये प्रदेश संबंधी ११ भांगे हुए । जिस तरह अजीव संबंधी पूर्वदिशा के ११ भांगे कहे, उनमें से काल को छोड़ कर बाकी १० भांगे कह देना । ये ३३ (१२ + ११ + १० = ३३) भांगे हुए ।

९ ग्रैवेयक, ५ अनुत्तर विमान, १ इसिपब्भारापुढवी, इन १५ के ऊपर का चरमान्त और नीचे का चरमान्त, ये ३० और १ लोक के नीचे का चरमान्त, इन ३१ बोलों में बोल पावे बत्तीस-बत्तीस (११ देशसंबंधी, ११ प्रदेशसंबंधी, १० अजीवसंबंधी) । जिस तरह ऊपर ३७ बोलों में ३३ भांगे कहे हैं, उसी तरह कह देना किन्तु 'एक पंचेन्द्रिय के बहुत देश' यह भांगा नहीं कहना ।

ऊर्ध्वलोक के चरमान्त में भांगा पावे २८ (९ देश के, ९ प्रदेश के, १० अजीव के) – १ सव्वे वि ताव हुज्जा एगिंदिय अणिंदिय देसा, १ बहुत एकेन्द्रिय बहुत अनिन्द्रिय जीवों के बहुत देश, एक द्वीन्द्रिय का एक देश, २ बहुत एकेन्द्रिय बहुत अनिन्द्रिय जीवों के बहुत देश, बहुत द्वीन्द्रिय जीवों के बहुत देश । इसी तरह त्रीन्द्रिय के २, चतुरिन्द्रिय के २ और पंचेन्द्रिय के २ भांगे कह देना । ये ९ भांगे देशसंबंधी हुए ।

१ सव्वे वि ताव हुज्जा एगिंदिय अणिंदिय पएसा, १ बहुत

एकेन्द्रिय बहुत अनिन्द्रिय के बहुत प्रदेश, एक द्वीन्द्रिय के बहुत प्रदेश, २ बहुत एकेन्द्रिय बहुत अनिन्द्रिय जीवों के बहुत प्रदेश, बहुत द्वीन्द्रिय जीवों के बहुत प्रदेश । इसी तरह त्रीन्द्रिय के २, चतुरिन्द्रिय के २, और पंचेन्द्रिय के २ भांगे कहना । ये प्रदेश के ९ भांगे हुए । अजीव के १० भांगे ऊपर ३१ बोलों में कहे, उस तरह कह देना । ये २८ (९ देश के, ९ प्रदेश के, १० काल के = २८) भांगे हुए ।

३५ बोलों के पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण इन चार दिशा के चरमान्त के बोल १४० (३५ X ४ = १४०) में भांगा पावे छत्तीस-छत्तीस, रत्नप्रभापृथ्वी के ऊपर के चरमान्त में ३८ भांगे कहे, उनमें से काल का एक भांगा और * एक अनिन्द्रिय के एक

** पूर्वदिशा का चरमान्त--लोक का अन्तिम भाग विषम एक प्रदेश रूप है। इसलिए उसमें असंख्यात प्रदेशावगाही जीव नहीं पाया जा सकता है। किन्तु एक प्रदेश के विषय में जीव में देशों का और प्रदेशों का अवगाहन हो सकता है, इसलिए वहां 'जीव के देश और प्रदेश होते हैं' ऐसा कहा गया है। इसी तरह वहां पुद्गलस्कन्ध, धर्मास्तिकाय आदि के देश और उनके प्रदेश होने से 'अजीव' अजीवदेश और अजीवप्रदेश होते हैं, ऐसा कहा गया है। जो जीव देश हैं, उनमें पृथ्वीकायादि एकेन्द्रिय जीवों के देश लोकान्त में अवश्य होते हैं, यह पहला विकल्प हुवा। दो संयोगी विकल्प इस प्रकार बनते हैं- १ एकेन्द्रिय के बहुत देश, द्वीन्द्रिय का एक देश। लोकान्त में द्वीन्द्रिय जीव नहीं होते हैं किन्तु जो द्वीन्द्रिय जीव मरकर एकेन्द्रिय में उत्पन्न होने वाला है, जब वह मारणान्तिकसमुद्घात*

देश का एक भांगा ये २ भांगे छोड़ कर बाकी ३६ भांगे कह देना।

३५ बोल के ऊपर का चरमान्त और नीचे का चरमान्त, ये ७० बोल और १० दिशा, ३ लोक इन ८३ बोलों में धर्मास्तिकाय का एक देश, बहुत प्रदेश कहना।

प्रदेशों के ४ बोलों में धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय का एक देश और एक प्रदेश कहना।

१४० बोलों में (३५ बोल की ४ दिशा में) धर्मास्तिकाय के बहुत देश, बहुत प्रदेश कहना।

करके उत्पत्तिस्थान को प्राप्त होता है, इस अपेक्षा से यह विकल्प बनता है। इस प्रकार दसवें शतक के प्रथम उद्देशे में आग्नेयीदिशा के विषय में भांगे कहे हैं, वे यहां पर भी जान लेना चाहिए। वे इस प्रकार हैं- १ सव्वे वि ताव हुज्जा एगिंदिय देसा १ बहुत एकेन्द्रिय जीवों के बहुत देश, एक द्वीन्द्रिय जीव का एक देश। २ अथवा बहुत एकेन्द्रिय जीवों के बहुत देश, बहुत द्वीन्द्रिय जीवों के बहुत देश। अथवा ३ बहुत एकेन्द्रियों जीवों के बहुत देश, बहुत द्वीन्द्रिय जीवों के बहुत देश, अथवा ४ बहुत एकेन्द्रिय जीवों के देश, एक त्रीन्द्रिय का एक देश। ५ अथवा बहुत एकेन्द्रिय जीवों के बहुत देश, एक त्रीन्द्रिय जीव का बहुत देश। ६ अथवा बहुत एकेन्द्रिय जीवों के बहुत देश, बहुत त्रीन्द्रिय जीवों के बहुत देश । इसी तरह चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय के तीन-तीन भांगे जान लेना चाहिए। इसी तरह अनिन्द्रिय के भी भांगे कह देना चाहिए किन्तु आग्नेयी दिशा में तीन भांगे कहे हैं उनमें से पहला भांगा (एकेन्द्रियों के बहुत देश और अनिन्द्रिय का एक देश) यहां नहीं कहना चाहिए क्योंकि

३४. चौबीस ठाणा

१. गति

गतिनामकर्म के उदय से जीव की पर्याय विशेष को गति कहते हैं, अथवा जीव मरकर भवांतर में जाता है, उसे गति कहते हैं । वह चार प्रकार की है–

१. नरकगति, २. तिर्यंचगति, ३. मनुष्यगति, ४. देवगति।

२. इन्द्रिय

जीव ज्ञानादि ऐश्वर्य से सम्पन्न है । इसलिये उसे इन्द्र कहते हैं, उस इन्द्र के चिन्ह को इन्द्रिय कहते हैं । इन्द्रिय से जीव की पहचान होती है । जैसे स्पर्शनेन्द्रिय से एकेन्द्रिय जीव जाने जाते हैं । इन्द्रियां ५ हैं –

१. श्रोत्रेन्द्रिय २. चक्षुरिन्द्रिय ३. घ्राणेन्द्रिय ४. रसनेन्द्रिय

केवलीसमुद्घात में जब आत्मप्रदेश कपाटाकार होते हैं, उस समय पूर्वदिशा के चरमान्त में प्रदेशों की हानि-वृद्धि के द्वारा विषमता होती है। इसलिए लोक के आंतरों (कोणों) में अनिन्द्रिय जीव इन्द्रियों के उपयोग रहित केवलज्ञान के बहुत देशों का संभव है किन्तु एक देश का संभव नहीं है, इसलिए अनिन्द्रिय में उपरोक्त पहला भांगा लागू नहीं होता है।

नोट– भगवतीसूत्र, शतक दसवें का पहिला उद्देशा, ग्यारहवें शतक का दसवां उद्देशा और सोलहवें शतक का आठवां उद्देशा, इन तीनों उद्देशों का १ थोकड़ा करने का उद्देश्य यह है कि सीखने वाले को सुगम रहे, क्योंकि तीनों शतक के भांगे प्राय: एक माफिक ही है।

५. स्पर्शनेन्द्रिय ।

३. काया

त्रस स्थावर नाम के उदय से जीव जिस पिंड में उत्पन्न हो उसे काया कहते हैं, काया ६ प्रकार की होती है–

१. पृथ्वीकाय २. अप्काय ३. तेऊकाय ४. वायुकाय ५. वनस्पतिकाय ६. त्रसकाय।

४. योग

मन,वचन,काया की प्रवृत्ति को योग कहते हैं । वीर्यान्तरायकर्म के क्षयोपशम या क्षय होने पर मन,वचन, काया के निमित्त से आत्मप्रदेशों के चंचल होने को योग कहते हैं ।

योग १५ प्रकार के हैं–

चार मन के– १. सत्यमनयोग, २. असत्यमनयोग, ३. मिश्रमनयोग, ४. व्यवहारमनयोग ।

चार वचन के– १. सत्यभाषा, २. असत्यभाषा, ३. मिश्रभाषा, ४. व्यवहारभाषा ।

सात काया– १. औदारिककाययोग, २. औदारिकमिश्रकाययोग, ३. वैक्रियकाययोग, ४. वैक्रियमिश्रकाययोग, ५. आहारककाययोग, ६. आहारकमिश्रकाययोग, ७. कार्मणकाययोग ।

५. वेद

नामकर्म के उदय से होने वाले शरीर के स्त्री, पुरुष और नपुंसक रूप चिन्ह को द्रव्यवेद कहते हैं और मोहनीयकर्म के उदय से जीव के विषयभोग की अभिलाषा को भाववेद कहते हैं । वेद तीन प्रकार के होते हैं–

१. स्त्रीवेद, २. पुरुषवेद, ३. नपुंसकवेद ।

६. कषाय

क्रोधादि रूप आत्मा के विभावपरिणामों को कषाय कहते हैं । कषाय २५ प्रकार के हैं–

१६ कषाय– अनंतानुबन्धि १. क्रोध, २.मान, ३. माया, ४. लोभ । अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ । प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ। संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ, ये चार चतुष्क ।

नव नोकषाय– १. हास्य, २. रति, ३. अरति, ४. भय, ५. शोक, ६. जुगुप्सा, ७. स्त्रीवेद, ८. पुरुषवेद, ९. नपुंसकवेद। कुल १६ कषाय और नव नोकषाय = २५ कषाय ।

७ ज्ञान

किसी विवक्षित पदार्थ के विशेष धर्म को विषय करने वाला ज्ञान है । ज्ञान आठ प्रकार का है–

५ ज्ञान– १. मतिज्ञान, २. श्रुतज्ञान, ३. अवधिज्ञान, ४. मन:पर्यायज्ञान, ५. केवलज्ञान ।

३. अज्ञान– १. मति-अज्ञान, २. श्रुत-अज्ञान, ३. विभंग-ज्ञान ।

८ संयम

मन,वचन,काया का नियमन करना अर्थात् इनकी प्रवृत्ति में यतना करना संयम है । असंयम से होने वाले आस्रवों को रोकना संयमधर्म है । संयम ७ प्रकार का है – १. असंयम, २. संयमासंयम, ५ चरित्र–सामायिकचारित्र, छेदोपस्थापनीयचारित्र,

परिहारविशुद्धचारित्र, सूक्ष्मसंपरायचारित्र , यथाख्यातचारित्र ।

९. दर्शन

जिसमें विवक्षित पदार्थ का सामान्य प्रतिभास हो, उसे दर्शन कहते हैं । दर्शन के ४ भेद हैं–

१. चक्षुदर्शन २. अचक्षुदर्शन ३. अवधिदर्शन ४.केवल-दर्शन ।

१०. लेश्या

योग को प्रवृत्ति से उत्पन्न आत्मा के शुभाशुभ परिणाम को लेश्या कहते हैं अथवा योग और संक्लेश से अनुगत आत्मा का परिणामविशेष। लेश्या ६ प्रकार की है–

१. कृष्णलेश्या २. नीललेश्या ३. कापोतलेश्या ४. तेजोलेश्या ५. पद्मलेश्या ६. शुक्ललेश्या ।

११. भव्य

जिस जीव में मोक्षगमन की योग्यता हो, वह भव्य है और जिसमे मोक्षगमन की योग्यता न हो, वह अभव्य है ।

१२. संज्ञी

जिसके मन होता है, वह संज्ञी तथा जिसके मन नहीं, वह असंज्ञी है ।

१३. समकित

वीतराग एवम् वीतरागप्ररूपित तत्त्वों पर आस्था होना सम्यग्दर्शन है ।

समकित ७ प्रकार के हैं –

१. मिथ्यात्व, २. सास्वादन, ३. मिश्र, ४. उपशम, ५.

क्षायोपशम, ६. वेदकसम्यकत्व और ७. क्षायिक ।

१४. आहारक

शरीर नामकर्म के उदय से वचन और द्रव्यमन रूप बनने योग्य नोकर्मवर्गणा का जो ग्रहण होता है, उसे आहार कहते हैं । ३ शरीर और ६ पर्याप्तियों के योग्य पुद्गलों के ग्रहण को आहार कहते हैं । जब जीव आहार ग्रहण नहीं करता तब अनाहारक होता है ।

१५. गुणस्थान

मोह के क्षय, उपशम, क्षयोपशम और योग के निमित्त से सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र रूप आत्मा के गुणों की तारतम्य रूप अवस्थाविशेष को गुणस्थान कहते हैं ।

गुणस्थान १४ प्रकार के हैं – १. मिथ्यात्वगुणस्थान, २. सास्वादनगुणस्थान, ३. मिश्रगुणस्थान, ४. अविरतसम्यगद्दृष्टिगुणस्थान, ५. देशविरत सम्यगद्दृष्टि(श्रावक) गुणस्थान, ६. प्रमत्तसंयतगुणस्थान, ७. अप्रमत्तसंयतगुणस्थान, ८. अपूर्वकरणगुणस्थान, ९. अनिवृत्ति-बादरगुणस्थान, १०. सूक्ष्मसंपरायगुणस्थान, ११. उपशान्त-मोहनीयगुणस्थान, १२. क्षीणमोहनीयगुणस्थान, १३. सयोगीकेवली-गुणस्थान, १४. अयोगीकेवलीगुणस्थान ।

१६ जीव

जो द्रव्यप्राण–इन्द्रियबल, आयु, श्वासोच्छ्वास और भावप्राण (ज्ञान दर्शन आदि स्वाभाविक गुण) से जीता है और जीयेगा उसे जीव कहते हैं । जीव १४ प्रकार के होते हैं–

सूक्ष्म एकेन्द्रिय का अपर्याप्ता पर्याप्ता, बादर एकेन्द्रिय का

अपर्याप्ता पर्याप्ता, द्वीन्द्रिय का अपर्याप्ता पर्याप्ता, त्रीन्द्रिय का अपर्याप्ता पर्याप्ता, चतुरिन्द्रिय का अपर्याप्ता पर्याप्ता, असंज्ञी पंचेन्द्रिय का अपर्याप्ता पर्याप्ता, संज्ञी पंचेन्द्रिय का अपर्याप्ता पर्याप्ता ।

१७ पर्याप्ति

आहारादि पुद्गलों का ग्रहण करने तथा उन्हें परिणमाने की आत्मा की शक्तिविशेष को पर्याप्ति कहते हैं । पर्याप्ति ६ प्रकार की हैं–

१. आहारपर्याप्ति २. शरीरपर्याप्ति ३. इन्द्रियपर्याप्ति ४. श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति ५. भाषापर्याप्ति ६. मनपर्याप्ति ।

१८ प्राण

जीव के आधारभूत पदार्थों को अर्थात् जिनके सद्भाव से जीव किसी शरीर के साथ बन्धा रहे, उसे प्राण कहते हैं । प्राण १० प्रकार के हैं–

१. श्रोत्रेन्द्रियबलप्राण २. चक्षुरिन्द्रियबलप्राण, ३. घ्राणेन्द्रियबलप्राण, ४. रसनेन्द्रियबलप्राण, ५. स्पर्शेन्द्रियबलप्राण, ६. मनोबलप्राण, ७. वचनबलप्राण, ८. कायाबलप्राण , ९. श्वासोच्छ्वासबलप्राण, १०. आयुष्यबलप्राण ।

१९. संज्ञा

आहारादि की अभिलाषा करना संज्ञा है । संज्ञा ४ प्रकार की है– १. आहारसंज्ञा २. भयसंज्ञा ३. मैथुनसंज्ञा ४. परिग्रहसंज्ञा ।

२० उपयोग

ज्ञान, दर्शन में होती हुई आत्मा की प्रवृत्ति को अथवा

आत्मा के ज्ञान रूप व्यापार को उपयोग कहते हैं । उपयोग के १२ भेद हैं – ५ ज्ञान, ३ अज्ञान, ४ दर्शन । मूलतः दो भेद– १. साकारोपयोग, २. अनाकारोपयोग।

२१ दृष्टि

तत्त्वविचारणा की रुचि को दृष्टि कहते हैं । दृष्टि ३ प्रकार की होती है – १. मिथ्यादृष्टि, २. सम्यग्दृष्टि, ३. सम्यग्मिथ्यादृष्टि।

२२ कर्म

जीव के राग-द्वेष आदि परिणाम के निमित्त से कर्मवर्गणा रूप पुद्गलस्कन्ध जीव के साथ क्षीर-नीरवत् बन्ध को प्राप्त होते हैं , उन्हें कर्म कहते हैं । कर्म आठ प्रकार के होते हैं –

१. ज्ञानावरणीयकर्म २. दर्शनावरणीयकर्म, ३. वेदनीयकर्म, ४. मोहनीयकर्म, ५. आयुष्यकर्म, ६. नामकर्म, ७ गोत्रकर्म, ८. अन्तरायकर्म ।

२३ शरीर

जो शीर्ण होने वाला अर्थात् विनाश होने वाला है अथवा आत्मा जिसके द्वारा पूर्वबद्ध कर्मों को भोगता है, उसे शरीर कहते हैं । शरीर ५ प्रकार का होता है – १. औदारिकशरीर, २. वैक्रियशरीर, ३. आहारकशरीर, ४ तैजसशरीर, ५. कार्मणशरीर ।

२४ हेतु

मिथ्यात्व आदि जिन वैभाविक परिणामों से (कर्मजन्य आत्मा के परिणाम से) कर्मयोग्य पुद्गल कर्म रूप में परिणत हो जाते हैं, उन वैभाविक परिणामों को हेतु कहते हैं । हेतु ५७

हैं –

२५ कषाय, १५ योग, १२ अव्रत, ५ मिथ्यात्व = ५७ हेतु ।

चौबीस ठाणा

१. गति, २. इन्द्रिय, ३. काया, ४. योग, ५. वेद, ६. कषाय, ७. ज्ञान, ८. संयम, ९. दर्शन, १०. लेश्या, ११ भवी, १२. सन्नी, १३. समकित, १४. आहारक, १५. गुणस्थान, १६. जीव, १७. पर्याप्ति, १८. प्राण, १९. संज्ञा, २०. उपयोग, २१. दृष्टि, २२. कर्म, २३. शरीर, २४. हेतु ।

गतिद्वार

गति– गति पावे अपनी अपनी ।

इन्द्रिय– नरकगति, देवगति और मनुष्यगति में इन्द्रिय पावे १ (एक) पंचेन्द्रिय, तिर्यंच गति में इन्द्रिय पावे ५ ही ।

काया– नरक देव मनुष्य गति में काया पावे त्रसकाया, तिर्यंचगति में काया पावे ६ ही ।

योग– नरकगति, देवगति में योग पावे ११ (४ मन, ४ वचन, ३ काया का) । तिर्यंचगति में योग १३ (आहारक, आहारकमिश्र टला) मनुष्यगति में योग पावे १५ ।

कषाय– नरकगति में कषाय पावे २३ (स्त्री पुरुष वेद टला), देवगति में कषाय पावे २४, (नपुंसकवेद टला), मनुष्य, तिर्यंचगति में कषाय पावे २५ ।

ज्ञान– नारक देव तिर्यंचगति में ज्ञान ६ (३ ज्ञान, ३ अज्ञान) मनुष्य में ८ (५ ज्ञान, ३ अज्ञान) ।

संयम– नरकगति देवगति में संयम पावे १ (असंयम), तिर्यंचगति में संयम पावे २ (असंयम, संयमासंयम), मनुष्यगति में संयम पावे ७ ।

दर्शन– नरकगति, देवगति, तिर्यंचगति में दर्शन पावे ३ (केवलदर्शन टला) मनुष्यगति में दर्शन पावे ४ ।

लेश्या– नरकगति में लेश्या पावे ३ (प्रथम की), तिर्यंचगति, मनुष्यगति देवगति में लेश्या पावे ६ ही ।

भवी– चारों गति में भव्य-अभव्य दोनों ही हैं ।

सन्नी– चारों गति में सन्नी-असन्नी दोनों ही ।

समकित– चारों गति में सममित पावे ७ ही ।

आहारक– चारों गति में आहारक, अनाहारक दोनों ही हैं ।

गुणस्थान– नरकगति, देवगति में गुणस्थान पावे ४ (प्रथम के) । तिर्यंचगति में गुणस्थान पावे ५ (प्रथम के), मनुष्यगति में १४ गुणस्थान हैं।

जीव– नरकगति, देवगति, मनुष्यगति में जीव का भेद ३ (सन्नी पंचेन्द्रिय का पर्याप्ता, अपर्याप्ता, असन्नी पंचेन्द्रिय का अपर्याप्ता), तिर्यंचगति में जीव का भेद पावे १४ ही ।

पर्याप्त– चारों ही गति में पर्याप्ति पावे ६ ही ।

प्राण– चारों ही गति में प्राण पावे १० ही ।

संज्ञा– चारों ही गति में संज्ञा पावे ४ ।

उपयोग– नरकगति, देवगति, तिर्यंचगति में उपयोग पावे ९ । (३ ज्ञान, ३ अज्ञान, ३ दर्शन) मनुष्यगति में उपयोग पावे १२ ही ।

दृष्टि– चारों गति में दृष्टि पावे ३ ही ।
कर्म– चारों गति में कर्म पावे ८ ही ।
शरीर– नरकगति, देवगति में शरीर पावे तीन (वैक्रिय, तैजस, कार्मण) । तिर्यंचगति में शरीर पावे ४ (आहारक टला) मनुष्यगति में शरीर पावे ५ ही ।
हेतु– नरकगति में हेतु पावे ५१ । (आहारक, आहारकमिश्र, औदारिक, औदारिकमिश्र, स्त्री पुरुष वेद टला), देवगति में हेतु ५२ (पूर्वोक्त में १ वेद बढ़ा), तिर्यंचगति में ५५ (आहारक, आहारकमिश्र टला), मनुष्यगति में हेतु पावे ५७ ।

इन्द्रियद्वार

गति– एकेन्द्रिय, तीन विकलेन्द्रिय में गति पावे १ तिर्यंचगति । पंचेन्द्रिय में गति पावे ४ ही ।
इन्द्रिय– इन्द्रिय पावे अपनी-अपनी ।
काया– एकेन्द्रिय में काया पावे ५ (पृथ्वी, पानी, तेऊ, वायु वनस्पति) । तीन विकलेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय में काया पावे १ त्रस ।
योग– एकेन्द्रिय में योग पावे ५ (औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रिय , वैक्रियमिश्र, कार्मणयोग) । तीन विकलेन्द्रिय में योग पावे ४ (औदारिक, औदारिकमिश्र, व्यवहारभाषा, कार्मणयोग), पंचेन्द्रिय में योग पावे १५ ही ।
वेद– एकेन्द्रिय, तीन विकलेन्द्रिय में वेद पावे १ नपुंसक वेद । पंचेन्द्रिय में वेद पावे ३ ही ।
कषाय– एकेन्द्रिय और तीन विकलेन्द्रिय में कषाय पावे २३ (दो वेद टला), पंचेन्द्रिय में कषाय पावे २५ ही ।

ज्ञान– एकेन्द्रिय में ज्ञान पावे २ (२ अज्ञान), तीन विकलेन्द्रिय में ज्ञान पावे ४ (२ ज्ञान, २ अज्ञान), पंचेन्द्रिय में ज्ञान पावे ७ (केवलज्ञान टला) ।

संयम– एकेन्द्रिय, तीन विकलेन्द्रिय में संयम पावे १ (असंयम), पंचेन्द्रिय में संयम पावे ७ ही ।

दर्शन– एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय में दर्शन पावे १ (अचक्षुदर्शन), चतुरिन्द्रिय में दर्शन पावे २ (चक्षु-अचक्षुदर्शन), पंचेन्द्रिय में दर्शन पावे ३ (केवलदर्शन टला)।

लेश्या– एकेन्द्रिय में लेश्या पावे ४ (प्रथम की), तीन विकलेन्द्रिय में लेश्या पावे ३ (प्रथम की), पंचेन्द्रिय में लेश्या पावे ६ ही ।

भवी– पांचों इन्द्रियों में भव्य, अभव्य दोनों ।

सन्नी– एकेन्द्रिय और तीन विकलेन्द्रिय असन्नी, पंचेन्द्रिय सन्नी, असन्नी दोनों ।

समकित– एकेन्द्रिय में समकित पावे १ (मिथ्यात्व), तीन विकलेन्द्रिय में समकित पावे २ (मिथ्यात्व, सास्वादन), पंचेन्द्रिय में समकित पावे ७ ही ।

आहारक– पांचों इन्द्रियों में आहारक, अनाहारक दोनों ।

गुणस्थान– एकेन्द्रिय में गुणस्थान पावे १, तीन विकलेन्द्रिय नें गुणस्थान पावे २ (१,२), पंचेन्द्रिय में गुणस्थान पावे १२ ही (१३, १४ टला)।

जीव– एकेन्द्रिय में जीव का भेद पावे ४ (प्रथम के), द्वीन्द्रिय में जीव के भेद पावे २ (५, ६ वां), त्रीन्द्रिय में जीव का भेद पावे २ (७,८ वां), चतुरिन्द्रिय में जीव का भेद पावे २ (९,१० वां),

पंचेन्द्रिय में जीव का भेद पावे चार (११, १२, १३, १४ वां) ।
पर्याप्ति— एकेन्द्रिय में पर्याप्ति पावे ४ (प्रथम की), विकलेन्द्रिय में पर्याप्ति पावे ५, पंचेन्द्रिय में पर्याप्ति पावे ६ ही ।
प्राण— एकेन्द्रिय में प्राण पावे ४, द्वीन्द्रिय में प्राण पावे ६, त्रीन्द्रिय में प्राण पावे ७, चतुरिन्द्रिय में प्राण पावे ८, पंचेन्द्रिय में प्राण पावे १० ही ।
संज्ञा— पांचों इन्द्रियों में संज्ञा पावे ४ ही ।
उपयोग— एकेन्द्रिय में उपयोग पावे ३ (२ अज्ञान, १ दर्शन), द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय में उपयोग पावे ५, चतुरिन्द्रिय में उपयोग पावे ६, पंचेन्द्रिय में उपयोग पावे १० ।
दृष्टि— एकेन्द्रिय में दृष्टि पावे १, तीन विकलेन्द्रिय में दृष्टि पावे २ (मिश्रदृष्टि टली), पंचेन्द्रिय में दृष्टि पावे ३ ही ।
कर्म— पांचों इन्द्रिय में कर्म पावे ८ ही ।
शरीर— एकेन्द्रिय में शरीर पावे ४ (आहारक टला), तीन विकलेन्द्रिय में शरीर पावे ३ (आहारक, वैक्रिय टला), पंचेन्द्रिय में शरीर पावे ५ ही ।
हेतु— एकेन्द्रिय में हेतु पावे ४१ (१० योग, ४ मिथ्यात्व, २ वेद टला), तीन विकलेन्द्रिय में हेतु पावे ४० (११ योग, ४ मिथ्यात्व, २ वेद टला), पंचेन्द्रिय में हेतु पावे ५७ ही ।

कायाद्वार

गति— ५ स्थावर में गति पावे १ (तिर्यंच), त्रसकाया में गति पावे चारों ही ।
इन्द्रिय— ५ स्थावर में इन्द्रिय पावे १ (एकेन्द्रिय), त्रसकाया में

इन्द्रिय पावे चार (एकेन्द्रिय टली) ।
काया– काया पावे अपनी-अपनी ।
योग– चार स्थावर (वायुकाय को छोड़कर) में योग पावे ३ (औदारिक, औदारिकमिश्र कार्मण), वायुकाय में योग पावे ५ (पूर्वोक्त ३ एवं वैक्रिय, वैक्रियमिश्र बढ़ा) । त्रसकाया में योग पावे १५ ही .।
वेद– ५ स्थावर में वेद पावे १ (नपुंसक), त्रसकाया में में वेद पावे ३ ही ।
कषाय– पांच स्थावर में कषाय पावे २३ (स्त्री पुरुष वेद टला), त्रसकाया में कषाय पावे २५ ही ।
ज्ञान– पांच स्थावर में ज्ञान पावे २ अज्ञान (मति श्रुत अज्ञान), त्रसकाया में ज्ञान पावे ८ ही ।
संयम– पांच स्थावर में संयम एक (असंयम) त्रसकाया में संयम पावे ७ ही ।
दर्शन– पांच स्थावर में दर्शन पावे एक (अचक्षुदर्शन), त्रसकाया में दर्शन पावे चारों ही ।
लेश्या– पृथ्वी, पानी, वनस्पति में लेश्या पावे ४(प्रथम की), तेऊकाय में लेश्या पावे तीन (प्रथम की), त्रसकाया में लेश्या पावे ६ ही ।
भवी– ६ काया भव्य और अभव्य दोनों ही ।
सन्नी– पांच स्थावर में असन्नी, त्रसकाया में सन्नी-असन्नी ।
समकित– पांच स्थावर में समकित पावे १ मिथ्यात्व , त्रसकाया में समकित पावे ७ ही ।

जीव– सात योग में जीव का भेद पावे १ (सन्नी पंचेन्द्रिय का पर्याप्ति), व्यवहारभाषा में जीव का भेद पावे ५ (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असन्नी पंचेन्द्रिय, सन्नी पंचेन्द्रिय का पर्याप्ता) ।

पर्याप्ति– आठ योग में पर्याप्ति पावे ६ ही ।

प्राण– आठ योग में प्राण पावे १० ही ।

संज्ञा– आठ योग में संज्ञा पावे ४ ही ।

उपयोग– सत्य के चौक में उपयोग पावे १२ ही, असत्य के चौक में उपयोग पावे १० (केवलद्विक टला) ।

दृष्टि– आठ योग में दृष्टि पावे ३ ही ।

कर्म– आठ योग में कर्म पावे आठों ही ।

शरीर– आठ योग में शरीर पावे ५ ही ।

हेतु– आठ योग में हेतु पावे ५६ (कार्मणयोग टला) ।

योगद्वार

(७ योग काया के)

गति– औदारिक, औदारिकमिश्र में गति पावे २ (मनुष्य, तिर्यंच), वैक्रिय , वैक्रियमिश्र, कार्मणकाय के योग में गति पावे ४ ही, आहारक, आहारकमिश्र में गति पावे १ (मनुष्य) ।

इन्द्रिय– औदारिक, औदारिकमिश्र, कार्मण में इन्द्रिय पावे ५ ही, वैक्रिय, वैक्रियमिश्र में इन्द्रिय पावे २ (एकेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय), आहारक, आहारकमिश्र में इन्द्रिय पावे १ (पंचेन्द्रिय) ।

काया– औदारिक, औदारिकमिश्र कार्मण में काया पावे ६ ही, वैक्रिय, वैक्रियमिश्र में काया पावे दो (वायुकाय, त्रसकाय), आहारक, आहारकमिश्र में काया पावे १ त्रस ।

योग– ६ योग में पावे ९ (४ मन, ४ वचन, १ काययोग पावे अपना-अपना), कार्मण में १ (कार्मणकाययोग) ।

वेद– औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रिय, वैक्रियमिश्र, कार्मण में वेद पावे ३ ही । आहारक, आहारकमिश्र में वेद पावे २ (पुरुष, नपुसंक वेद) ।

कषाय– आहारक, आहारकमिश्र में कषाय पावे १२ (संज्वलन चतुष्क व नोकषाय में स्त्रीवेद टला), शेष योग में कषाय पावे २५ ही ।

ज्ञान– औदारिक, औदारिकमिश्र में ज्ञान पावे ८ ही, वैक्रिय वैक्रियमिश्र में ज्ञान पावे ७ (केवलज्ञान टला), आहारक आहारकमिश्र में ज्ञान पावे ४ (प्रथम के) कार्मणकाययोग में ज्ञान पावे ७ (मन:पर्यायज्ञान टला) ।

संयम– औदारिक में संयम पावे ७ ही, औदारिकमिश्र में संयम पावे ५ (परिहारविशुद्ध, सूक्ष्मसम्परायचारित्र टला), वैक्रिय वैक्रियमिश्र में संयम पावे ४ (प्रथम के ४), आहारक आहारकमिश्र में संयम पावे २ (सामायिक, छेदोपस्थापनीय), कार्मणकाययोग में संयम पावे २ (असंयम, यथाख्यात) ।

दर्शन– औदारिक औदारिकमिश्र में दर्शन पावे ४ ही, वैक्रिय वैक्रियमिश्र, आहारक आहारकमिश्र में दर्शन पावे ३ (केवलदर्शन टला), कार्मण में दर्शन पावे ३ (चक्षुदर्शन टला) ।

लेश्या– ७ योग में लेश्या पावे ६ ही ।

भवी– आहारक, आहारकमिश्र भव्य, शेष योग भव्य अभव्य दोनों ही ।

जीव– सात योग में जीव का भेद पावे १ (सन्नी पंचेन्द्रिय का पर्याप्ति), व्यवहारभाषा में जीव का भेद पावे ५ (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असन्नी पंचेन्द्रिय, सन्नी पंचेन्द्रिय का पर्याप्ता) ।

पर्याप्ति– आठ योग में पर्याप्ति पावे ६ ही ।

प्राण– आठ योग में प्राण पावे १० ही ।

संज्ञा– आठ योग में संज्ञा पावे ४ ही ।

उपयोग– सत्य के चौक में उपयोग पावे १२ ही, असत्य के चौक में उपयोग पावे १० (केवलद्विक टला) ।

दृष्टि– आठ योग में दृष्टि पावे ३ ही ।

कर्म– आठ योग में कर्म पावे आठों ही ।

शरीर– आठ योग में शरीर पावे ५ ही ।

हेतु– आठ योग में हेतु पावे ५६ (कार्मणयोग टला) ।

योगद्वार

(७ योग काया के)

गति– औदारिक, औदारिकमिश्र में गति पावे २ (मनुष्य, तिर्यंच), वैक्रिय , वैक्रियमिश्र, कार्मणकाय के योग में गति पावे ४ ही, आहारक, आहारकमिश्र में गति पावे १ (मनुष्य) ।

इन्द्रिय– औदारिक, औदारिकमिश्र, कार्मण में इन्द्रिय पावे ५ ही, वैक्रिय, वैक्रियमिश्र में इन्द्रिय पावे २ (एकेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय), आहारक, आहारकमिश्र में इन्द्रिय पावे १ (पंचेन्द्रिय) ।

काया– औदारिक, औदारिकमिश्र कार्मण में काया पावे ६ ही, वैक्रिय, वैक्रियमिश्र में काया पावे दो (वायुकाय, त्रसकाय), आहारक, आहारकमिश्र में काया पावे १ त्रस ।

योग– ६ योग में पावे ९ (४ मन, ४ वचन, १ कायायोग पावे अपना-अपना), कार्मण में १ (कार्मणकाययोग) ।

वेद– औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रिय, वैक्रियमिश्र, कार्मण में वेद पावे ३ ही । आहारक, आहारकमिश्र में वेद पावे २ (पुरुष, नपुसंक वेद) ।

कषाय– आहारक, आहारकमिश्र में कषाय पावे १२ (संज्वलन चतुष्क व नोकषाय में स्त्रीवेद टला), शेष योग में कषाय पावे २५ ही ।

ज्ञान– औदारिक, औदारिकमिश्र में ज्ञान पावे ८ ही, वैक्रिय वैक्रियमिश्र में ज्ञान पावे ७ (केवलज्ञान टला), आहारक आहारकमिश्र में ज्ञान पावे ४ (प्रथम के) कार्मणकाययोग में ज्ञान पावे ७ (मन:पर्यायज्ञान टला) ।

संयम– औदारिक में संयम पावे ७ ही, औदारिकमिश्र में संयम पावे ५ (परिहारविशुद्ध, सूक्ष्मसम्परायचारित्र टला), वैकिय वैकियमिश्र में संयम पावे ४ (प्रथम के ४), आहारक आहारकमिश्र में संयम पावे २ (सामायिक, छेदोपस्थापनीय), कार्मणकाययोग में संयम पावे २ (असंयम, यथाख्यात) ।

दर्शन– औदारिक औदारिकमिश्र में दर्शन पावे ४ ही, वैक्रिय वैक्रियमिश्र, आहारक आहारकमिश्र में दर्शन पावे ३ (केवलदर्शन टला), कार्मण में दर्शन पावे ३ (चक्षुदर्शन टला) ।

लेश्या– ७ योग में लेश्या पावे ६ ही ।

भवी– आहारक, आहारकमिश्र भव्य, शेष योग भव्य अभव्य दोनों ही ।

सन्नी– आहारक, आहारकमिश्र सन्नी, शेष योग सभी सन्नी और असन्नी दोनों ही ।

समकित– औदारिक, वैक्रिय योग में समकित पावे ७ ही । औदारिकमिश्र, वैक्रियमिश्र, कार्मण में समकित पावे ६ (मिश्र टला) आहारक आहारकमिश्र में समकित पावे ४ (मिथ्यात्व, सास्वादन, मिश्र टला) ।

आहारक– ६ योग आहारक, कार्मणयोग अनाहारक ।

गुणस्थान– औदारिक में गुणस्थान पावे १३ (प्रथम के), औदारिकमिश्र में गुणस्थान पावे ६ (प्रथम से छठे तक, तीसरा छोड़कर), आहारक में गुणस्थान पावे २ (६-७ गुणस्थान), आहारकमिश्र में गुणस्थान पावे १ (६ वां), कार्मण में गुणस्थान पावे ४ (१,२,४,१३ गुणस्थान), वैक्रिय में ७, वैक्रियमिश्र ५ ।

जीव– औदारिक में जीव का भेद पावे १४ ही, औदारिकमिश्र में जीव का भेद पावे ९ (सात का अपर्याप्त, सन्नी पंचेन्द्रिय का पर्याप्त, एक बादर एकेन्द्रिय का पर्याप्त), वैक्रिय, वैक्रियमिश्र में जीव का भेद पावे ४ (४, ११, १३, १४), आहारक, आहारकमिश्र में जीव का भेद पावे १ (१४ वां), कार्मण में जीव का भेद पावे ८ (सात का अपर्याप्त, एक संज्ञी पंचेन्द्रिय का पर्याप्त) ।

पर्याप्ति– सात योगों में पर्याप्ति पावे ६ ही ।

प्राण– ६ योग में प्राण पावे १० ही, कार्मण में पावे २ (कायबलप्राण आयुष्यबलप्राण) ।

संज्ञा– ७ योग में संज्ञा पावे ४ ही ।

उपयोग– औदारिक, औदारिकमिश्र में उपयोग पावे १२ ही, वैक्रिय,

वैक्रियमिश्र में उपयोग पावे १० (केवलज्ञान, केवलदर्शन टला), आहारक, आहारकमिश्र में उपयोग पावे ७ (४ ज्ञान, ३ दर्शन), कार्मण में उपयोग पावे १० (मन:पर्यायज्ञान, चक्षुदर्शन टला)।

दृष्टि– औदारिक, वैक्रिय में दृष्टि पावे ३, औदारिकमिश्र, वैक्रियमिश्र में दृष्टि पावे २ (मिश्र टली), आहारक, आहारकमिश्र में दृष्टि पावे १ (सम्यग्दृष्टि), कार्मण में दृष्टि पावे २ (मिश्रदृष्टि टली) ।

कर्म– सात योग में कर्म पावे ८ ही ।

शरीर– औदारिक, औदारिकमिश्र, कार्मण में शरीर पावे ३ (औदारिक, तैजस, कार्मण), वैक्रिय वैक्रियमिश्र में शरीर पावे ४ (आहारकशरीर टला), आहारक, आहारकमिश्र में शरीर पावे ४ (वैक्रियशरीर टला) ।

हेतु– औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रिय, वैक्रियमिश्र में हेतु पावे ५१ (६ योग टले), आहारक, आहारकमिश्र में हेतु पावे २१ (१२ कषाय ९ योग), कार्मण में हेतु पावे ४३ (१४ योग टले) ।

वेदद्वार

गति– पुरुषवेद, स्त्रीवेद में गति पावे ३ (नरकगति टली), नपुंसकवेद में गति पावे ३ (देवगति टली) ।

इन्द्रिय– पुरुषवेद, स्त्रीवेद में इन्द्रिय पावे १ (पंचेन्द्रिय), नपुंसकवेद में इन्द्रिय पावे ५ ही ।

काया– पुरुषवेद, स्त्रीवेद में काया पावे १ (त्रस की), नपुंसकवेद में काया पावे ६ ।

योग– पुरुषवेद, नपुंसकवेद में योग पावे १५ । स्त्रीवेद में योग पावे

१३ (आहारक, आहारकमिश्र टला) ।
वेद– वेद पावे अपना- अपना ।
कषाय– तीनों वेद में कषाय पावे २३, २३ (२ वेद टला) ।
ज्ञान– तीनों वेद में ज्ञान पावे ७ (केवलज्ञान टला) ।
संयम– स्त्रीवेद में संयम पावे ४ (प्रथम के ४), पुरुष नपुंसक में संयम पावे ५ (छठा सातवां टला) ।
दर्शन– तीनों वेद में दर्शन पावे ३ (केवलदर्शन टला) ।
लेश्या– तीनों वेद में लेश्या पावे ६ ही ।
भवी– तीनों वेद में भव्य, अभव्य दोनों ।
सन्नी– पुरुष स्त्री वेद सन्नी, नपुंसक वेद सन्नी, असन्नी दोनों ।
समकित– तीनों वेद में समकित पावे ७ ही ।
आहारक– तीनों वेद में आहारक, अनाहारक दोनों ।
गुणस्यान– तीनों वेद में गुणस्थान पावे नौ (प्रथम के) ।
जीव– पुरुषवेद, स्त्रीवेद में जीव का भेद पावे २ (संज्ञीपंचेन्द्रिय का पर्याप्त, अपर्याप्त) । नपुंसकवेद में जीव का भेद पावे १४ ही ।
पर्याप्ति– तीनों वेद में पर्याप्ति पावे ६ ही ।
प्राण– तीनों वेद में प्राण पावे १० ही ।
संज्ञा– तीनों वेद में संज्ञा पावे ४ ही ।
उपयोग– तीनों वेद में उपयोग पावे १० (केवलद्विक टला) ।
दृष्टि– तीनों वेद में दृष्टि पावे ३ ही ।
कर्म– तीनों वेद में कर्म पावे ८ ही ।
शरीर– पुरुष, नपुंसक वेद में शरीर पावे ५ ही, स्त्रीवेद में शरीर पावे ४(आहारकशरीर टला) ।

हेतु– स्त्रीवेद में हेतु पावे ५३ (दो वेद, आहारक, आहारकमिश्र २ योग टला), पुरुष नपुंसक वेद में हेतु पावे पावे ५५ (दो वेद टला) ।

कषायद्वार

(२२ कषाय, ३ वेद को छोड़कर)

गति– २२ कषाय में गति पावे ४ ही ।

इन्द्रिय– २२ कषाय में इन्द्रिय पावे ५ ही ।

काया– २२ कषाय में काया पावे ६ ही ।

योग– १२ कषाय में योग पावे १३ (आहारक, आहारकमिश्र टला), १० कषाय में योग पावे १५ ही ।

वेद– २२ कषाय में वेद पावे तीनों ही ।

कषाय– २२ कषाय में कषाय पावे आप-आपकी ।

ज्ञान– १२ कषाय में ज्ञान पावे ६ (मनपर्याय केवलज्ञान टला), १० कषाय में ज्ञान पावे ७ (केवलज्ञान टला) ।

संयम– पहले, दूसरे चतुष्क में संयम पावे १ (असंयम), तीसरे चतुष्क में संयम २ (असंयम, संयमासंयम), छः हास्यादिक संज्वलनत्रिक में संयम पावे ५ (प्रथम के), संज्वलन लोभ में संयम पावे ६ (यथाख्यातचारित्र टला) ।

दर्शन– २२ कषाय में दर्शन पावे ३ (केवलदर्शन टला) ।

लेश्या– २२ कषाय में लेश्या पावे ६ ।

भवी– २२ कषाय भवी, अभवी दोनों ।

सन्नी– २२ कषाय सन्नी, असन्नी दोनों ।

समकित– अनन्तानुबन्धीचतुष्क में समकित पावे २ (मिथ्यात्व,

सास्वादन) अप्रत्याख्यान आदि १८ कषाय में समकित पावे ७ ही ।

आहारक– २२ कषाय आहारक, अनाहारक दोनों ।

गुणस्थान– अनन्तानुबन्धिचतुष्क में गुणस्थान पावे २ (पहले के), अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क में गुणस्थान ४ (पहले के), प्रत्याख्यानावरणचतुष्क में गुणस्थान ५ (प्रथम के), ६ हास्यादिक में गुणस्थान पावे ८, संज्वलनत्रिक में गुणस्थान पावे ९, संज्वलनलोभ में गुणस्थान पावे १० ।

जीव– २२ कषाय में जीव का भेद पावे १४ ही ।

पर्याप्ति– २२ कषाय में पर्याप्ति पावे ६ ही ।

प्राण– २२ कषाय में प्राण पावे १० ही ।

संज्ञा– २२ कषाय में संज्ञा पावे ४ ही ।

उपयोग– १२ कषाय में उपयोग पावे ९ । १० कषाय में उपयोग पावे १० ।

दृष्टि– अनन्तानुबंधिकषाय में दृष्टि पावे २, शेष १८ कषाय में दृष्टि पावे ३, तीनों ही ।

कर्म– २२ कषाय में कर्म पावे ८ ही ।

शरीर– १२ कषाय में शरीर पावे ४ (आहारक टला), १० कषाय में शरीर पावे ५ ही ।

हेतु– १२ कषाय में हेतु पावे ५५ (आहारक, आहारकमिश्र टला), १० कषाय में हेतु पावे ५७ ही ।

गति– ३ ज्ञान ३ अज्ञान में गति पावे ४ ही, मनःपर्यायज्ञान केवलज्ञान में गति पावे १ (मनुष्य) की ।

इन्द्रिय– २ अज्ञान में इन्द्रिय पावे ५ ही, २ ज्ञान में इन्द्रिय पावे ४ (एकेन्द्रिय टली), अवधिज्ञान, विभंगज्ञान मनःपर्यायज्ञान में इन्द्रिय पावे १ (पंचेन्द्रिय), केवलज्ञान में इन्द्रिय पावे नहीं (अनिन्द्रिय) ।

काया– २ अज्ञान में काया पावे ६ ही, ५ ज्ञान व एक विभंगज्ञान में काया पावे १ (त्रसकाय) ।

योग– ३ अज्ञान में योग पावे १३ (आहारक, आहारकमिश्र टला), ३ ज्ञान में योग पावे १५ ही, मनःपर्यायज्ञान में योग पावे १४ (कार्मणकाययोग टला), केवलज्ञान में योग पावे ५ तथा ७ (सत्यमनोयोग, व्यवहारमनोयोग, सत्यभाषा, व्यवहारभाषा, औदारिक), ७ में (पूर्वोक्त में औदारिकमिश्र, कार्मणकाययोग बढ़ा) ।

वेद– ३ अज्ञान, ४ ज्ञान में वेद पावे ३ ही, केवलज्ञान में वेद पावे नहीं (अवेदी) ।

कषाय– ३ ज्ञान, ३ अज्ञान में कषाय पावे २५ ही, मनःपर्यायज्ञान में १३ (प्रथम के ३ चौक टले), केवलज्ञान अकषायी ।

ज्ञान– ज्ञान पावे अपना- अपना ।

संयम– ३ अज्ञान में १ असंयम, ३ ज्ञान में संयम पावे ७ ही । मनःपर्यायज्ञान में संयम पावे ५ (प्रथम के २ टले), केवलज्ञान में संयम पावे १ (यथाख्यातचारित्र) ।

दर्शन– ३ अज्ञान और ४ ज्ञान में दर्शन पावे ३ (केवलदर्शन टला), केवलज्ञान में दर्शन पावे १ (केवलदर्शन)

लेश्या– ४ ज्ञान, ३ अज्ञान में लेश्या पावे ६ ही, केवलज्ञान में लेश्या पावे १ शुक्ललेश्या ।

भव्य– ३ अज्ञान भव्य अभव्य दोनों, ५ ज्ञान भव्य ।

सन्नी– २ ज्ञान, २ अज्ञान सन्नी-असन्नी दोनों, अवधिज्ञान, मनःपर्यायज्ञान, विभंगज्ञान सन्नी, केवलज्ञान (नोसन्नी-नोअसन्नी) ।

समकित– ३ अज्ञान में समकित पावे २ (१-३), ३ ज्ञान में समकित पावे ५ (मिथ्यात्व, मिश्र टली), मनःपर्यायज्ञान में समकित पावे ४ (मिथ्यात्व, मिश्र, सास्वादन टली), केवलज्ञान में समकित पावे १ (क्षायिक समकित)।

आहारक– मनःपर्यायज्ञान आहारक, शेष आहारक, अनाहारक दोनों ।

गुणस्थान– ३ अज्ञान में गुणस्थान पावे २ (१-३), ३ ज्ञान में गुणस्थान पावे १० (१, ३, १३, १४ वां ये चार टले), मनःपर्यायज्ञान में गुणस्थान ७ (छठे से १२ तक) केवलज्ञान में २ (१३, १४) ।

जीव– २ अज्ञान में जीव का भेद पावे १४ ही, २ ज्ञान में जीव का भेद पावे ६ (५, ७, ९, ११, १३, १४), अवधिज्ञान-विभंगज्ञान में जीव का भेद २ (१३, १४), मनःपर्यायज्ञान केवलज्ञान में १ (१४) ।

पर्याप्ति– ५ ज्ञान ३ अज्ञान में पर्याप्ति पावे ६ ही ।

प्राण– ४ ज्ञान ३ अज्ञान में प्राण पावे १० ही, केवलज्ञान में प्राण पावे ५ (५ इन्द्रिय प्राण टले) ।

संज्ञा– ४ ज्ञान, ३ अज्ञान में संज्ञा पावे ४, केवलज्ञान (नोसंज्ञा नो असंज्ञा बहुत।) ।

उपयोग– प्रथम चार ज्ञान में उपयोग पावे ७ (प्रथम चार ज्ञान, तीन दर्शन), केवलज्ञान में उपयोग २ (केवलज्ञान, केवलदर्शन), तीन अज्ञान में उपयोग पावे ६ (तीन अज्ञान, तीन दर्शन)।

दृष्टि– ३ अज्ञान में दृष्टि पावे २ (मिथ्यादृष्टि, मिश्रदृष्टि), ५ ज्ञान में दृष्टि पावे १ (सम्यग्दृष्टि) ।

कर्म– ४ ज्ञान, ३ अज्ञान में कर्म पावे ८ ही, केवलज्ञान में कर्म पावे ४ (अघाति कर्म) ।

शरीर– ३ अज्ञान में शरीर पावे ४ (आहारकशरीर टला), ४ ज्ञान में शरीर पावे ५ ही, केवलज्ञान में शरीर पावे ३ (औदारिक, तैजस कार्मण शरीर) ।

हेतु– ३ अज्ञान में हेतु पावे ५५ (आहारक, आहारकमिश्र टला), ३ ज्ञान में हेतु पावे ५२ (५ मिथ्यात्व टला), मनःपर्यायज्ञान में हेतु पावे २७ (१४ योग, १३ कषाय), केवलज्ञान में हेतु पावे ५ तथा ७ (५ या ७ योग) ।

संयमद्वार

(सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसम्पराय, यथाख्यात ।)

गति– असंयम में गति पावे ४ ही, संयमासंयम में गति पावे २ (मनुष्य तिर्यंच गति पावे), ५ संयम में गति पावे एक मनुष्य की ।

इन्द्रिय– असंयम में इन्द्रिय पावे ५ ही, शेष संयम में इन्द्रिय पावे १ (पंचेन्द्रिय) ।

काया– असंयम में काया पावे ६ ही, शेष संयम में काया पावे एक

(त्रस) ।

योग– असंयम में योग पावे १३ (आहारक, आहारकमिश्र छोड़कर), संयमासंयम में १२ (आहारक, आहारकमिश्र, कार्मण काययोग टला) सामायिक, छेदोपस्थापनीय में योग १४ (कार्मणकाययोग टला) परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसम्पराय चारित्र में योग पावे ९ (४ मन, ४ वचन, १ औदारिककाया का), यथाख्यात में ११ (४ मन, ४ वचन, ३ काया– औदारिककाययोग, औदारिकमिश्रकाययोग , कार्मणकाययोग) ।

वेद– असंयम, संयमासंयम, सामायिक, छेदोपस्थापनीय में वेद पावे ३ ही, परिहारविशुद्धिचारित्र में वेद पावे २ (पुरुष, नपुंसक वेद) सूक्ष्मसंपराय, यथाख्यात चारित्र अवेदी ।

कषाय– असंयम में कषाय पावे २५ ही, संयमासंयम में कषाय पावे १७ (प्रथम के २ चौक टले), सामायिक छेदोपस्थापनीय में कषाय पावे १३ (तीन चौक टले), परिहारविशुद्धिचारित्र में कषाय पावे १२ (१ स्त्रीवेद टला), सूक्ष्मसम्परायचारित्र में कषाय पावे १ (संज्वलन का लोभ), यथाख्यातचारित्र अकषायी ।

ज्ञान– असंयम में ज्ञान पावे ६ (३ ज्ञान, ३ अज्ञान), संयमासंयम में ज्ञान पावे ३ (३ ज्ञान), ४ चारित्र में ज्ञान पावे ४, यथाख्यात में ज्ञान पावे ५ ।

संयम– संयम पावे अपना अपना ।

दर्शन– ६ संयम में दर्शन पावे ३ (केवलदर्शन टला), १ यथाख्यातचारित्र में दर्शन पावे ४ ही ।

लेश्या– प्रथम ४ संयम में लेश्या पावे ६ ही, परिहारविशुद्धिचारित्र

में लेश्या पावे ३ (प्रथम की), सूक्ष्मसम्पराय यथाख्यात चारित्र में लेश्या पावे १ (शुक्ललेश्या) ।

भव्य– असंयम भव्य अभव्य दोनों, शेष संयम भव्य ।

सन्नी– असंयम सन्नी असन्नी दोनों, शेष सभी सन्नी ।

समकित– असंयम में समकित पावे ७ ही, संयमासंयम, सामायिक, छेदोपस्थापनीय में समकित पावे ४ (मिथ्यात्व, सास्वादन, मिश्र समकित टली) परिहारविशुद्धिचारित्र में समकित पावे ३ (३ पूर्वोक्त, उपसमकित टली), सूक्ष्मसम्पराय, यथाख्यात में समकित पावे २ (उपशम, क्षायिक) ।

आहारक– असंयम यथाख्यातचारित्र आहारक, अनाहारक दोनों, शेष सभी चारित्र आहारक ।

गुणस्थान– असंयम में गुणस्थान पावे ४ (प्रथम के), संयमासंयम में गुणस्थान पावे १ (५ वां), सामायिक छेदोपस्थापनीय में गुणस्थान पावे ४ (६-७-८-९), परिहारविशुद्धिचारित्र में गुणस्थान पावे २ (६-७ वां), सूक्ष्मसम्पराय में गुणस्थान पावे १ (१० वां), यथाख्यातचारित्र में गुणस्थान पावे ४ (११ से १४ तक) ।

जीव– असंयम में जीव भेद पावे १४ ही, शेष संयम में जीव का भेद पावे १ (सन्नी पंचेन्द्रिय का पर्याप्ता) ।

पर्याप्ति– ७ ही संयम में पर्याप्ति पावे ६ ।

प्राण– ६ संयम में प्राण पावे १०, यथाख्यातचारित्र में ५ तथा १० प्राण ।

संज्ञा– ५ संयम (प्रथम के) में संज्ञा पावे ४, सूक्ष्मसम्पराय, यथाख्यातचारित्र में नोसन्ना बहुता ।

उपयोग– असंयम में उपयोग पावे ९, संयमासंयम में उपयोग पावे ६, ४ संयम में उपयोग पावे ७, यथाख्यातचारित्र में उपयोग पावे ९ ।

दृष्टि– असंयम में दृष्टि पावे ३ ही, शेष ६ चारित्र में दृष्टि १ (सम्यग्दृष्टि) ।

कर्म– ६ संयम में कर्म पावे ८ ही । यथाख्यातचारित्र में कर्म पावे ७ (मोहनीय टला) या ४ कर्म अघाति ।

शरीर– असंयम, संयमासंयम में शरीर पावे ४ (आहारक टला), सामायिक छेदोपस्थापनीय चारित्र में शरीर पावे ३ (औदारिक तैजस कार्मण) ।

हेतु– असंयम में हेतु पावे ५५ (आहारक, आहारकमिश्र टला), संयमासंयम में हेतु पावे ४० (प्रथम के २ चौक, ३ योग, ५ मिथ्यात्व, त्रस की अव्रत ये १७ टला), सामायिक छेदोपस्थापनीय में २७ (१४ योग, १३ कषाय), परिहार में २१ (९ योग, १२ कषाय), सूक्ष्मसम्परायचारित्र में हेतु पावे १० (९ योग, १ कषाय), यथाख्यातचारित्र में हेतु पावे ११ (११ योग) ।

दर्शनद्वार

गति– ३ दर्शन में गति पावे ४ ही, केवलदर्शन में गति पावे १ (मनुष्यगति) ।

इन्द्रिय– अचक्षुदर्शन में इन्द्रिय पावे ५ ही, चक्षुदर्शन में इन्द्रिय पावे २ (चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय), अवधिदर्शन में इन्द्रिय पावे १ पंचेन्द्रिय, केवलदर्शन अनिन्द्रिय ।

काया– अचक्षुदर्शन में काया पावे ६ ही, शेष तीन दर्शन में काया

पावे १ (त्रस)।

योग– चक्षुदर्शन में योग पावे १४ (कार्मण टला), अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन में योग १५ ही, केवलदर्शन में ५ तथा ७ (औदारिक, औदारिकमिश्र, सत्यमनोयोग, व्यवहारमनोयोग, सत्यभाषा, व्यवहारभाषा, कार्मण काययोग)।

वेद– ३ दर्शन में वेद पावे ३ ही। केवलदर्शन अवेदी।

कषाय– तीन दर्शन में कषाय पावे २५, केवलदर्शन अकषायी ।

ज्ञान– ३ दर्शन में ज्ञान पावे ७ (केवलज्ञान टला), केवलदर्शन में ज्ञान पावे १ केवलज्ञान।

संयम– ३ दर्शन में संयम पावे ७ ही, केवलदर्शन में १ यथाख्यातचारित्र।

दर्शन– दर्शन पावे अपना-अपना।

लेश्या– ३ दर्शन में लेश्या पावे ६ ही, केवलदर्शन में लेश्या पावे १ (शुक्ललेश्या) ।

भव्य– ३ दर्शन भव्य अभव्य दोनों, केवलदर्शन भव्य ।

सन्नी– चक्षु अचक्षु दर्शन सन्नी असन्नी, अवधिदर्शन सन्नी, केवलदर्शन नोसन्नी-नोअसन्नी ।

समकित– ३ दर्शन में समकित पावे ७ ही, केवलदर्शन में समकित पावे १ (क्षायिकसमकित) ।

आहारक– चक्षुदर्शन आहारक, शेष ३ दर्शन आहारक अनाहारक दोनों ही ।

गुणस्थान– ३ दर्शन में गुणस्थान पावे १२ (१ से १२ तक), केवलदर्शन में गुणस्थान पावे २ (१३, १४, वां) ।

जीव– चक्षुदर्शन में जीव का भेद पावे ३ या ६ (चतुरिन्द्रय, असन्नी पंचेन्द्रिय, सन्नी पंचेन्द्रिय का पर्याप्त या ६ में तीनों का अपर्याप्त बढ़ा), अचक्षुदर्शन में जीव का भेद पावे १४ ही, अवधिदर्शन में जीव का भेद पावे २ (सन्नी पंचेन्द्रिय पर्याप्त अपर्याप्त), केवलदर्शन में जीव का भेद पावे १ (१४ वां) ।

पर्याप्ति– ४ दर्शन में पर्याप्ति पावे ६ ही ।

प्राण– ३ दर्शन में प्राण पावे १० ही, केवलदर्शन में प्राण पावे ५ (५ इन्द्रियबलप्राण टले) ।

संज्ञा– ३ दर्शन में संज्ञा पावे ४ ही, केवलदर्शन नोसंज्ञा बहुत ।

उपयोग– ३ दर्शन में उपयोग पावे १०, केवलदर्शन में उपयोग पावे २ ।

दृष्टि– ३ दर्शन में दृष्टि पावे ३ ही, केवलदर्शन में दृष्टि पावे १ सम्यग्दृष्टि ।

कर्म– ३ दर्शन में कर्म पावे ८ ही, केवलदर्शन में कर्म पावे ४ (अघातीकर्म) ।

शरीर– ३ दर्शन में शरीर पावे ५ ही , केवलदर्शन में ३ शरीर (औदारिक तैजस कार्मण) ।

हेतु– चक्षुदर्शन में हेतु पावे ५६ (कार्मण टला), अचक्षुदर्शन अवधिदर्शन में हेतु पावे ५७ ही, केवलदर्शन में हेतु पावे ५ या ७ (५ या ७ योग) ।

लेश्याद्वार

गति– ३ लेश्या में गति पावे ४ ही, ३ लेश्या (तेजो पद्म शुक्ल) में गति पावे ३ (नरकगति टली) ।

इन्द्रिय– ३ लेश्या में इन्द्रिय पावे ५ ही, तेजोलेश्या में इन्द्रिय पावे २ (एकेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय), पद्म शुक्ल लेश्या में एक पंचेन्द्रिय ।

काया– तीन लेश्या (प्रथम की) में काया पावे ६ ही, तेजोलेश्या में काया ४ (पृथ्वी, पानी, वनस्पति, त्रसकाय) पद्मलेश्या, शुक्ललेश्या में काया पावे १ (त्रसकाया) ।

योग– ६ लेश्या में योग पावे १५ ही ।

वेद– ६ लेश्या में वेद पावे ३ ही ।

कषाय– ६ लेश्या में कषाय पावे २५ ही ।

ज्ञान– ५ लेश्या में ज्ञान पावे ७ (केवलज्ञान टला), शुक्ललेश्या में ज्ञान पावे ८ ही ।

संयम– ३ लेश्या में संयम पावे ४ (प्रथम के ४), तेजो पद्म लेश्या में संयम पावे ५, पूर्वोक्त ४ व (परिहारविशुद्धिचारित्र बढ़ा), शुक्ललेश्या में संयम पावे ७ ही ।

दर्शन– ५ लेश्या में दर्शन पावे ३ (केवलदर्शन टला), शुक्ललेश्या में दर्शन पावे ४ ही ।

लेश्या– लेश्या पावे अपनी-अपनी ।

भव्य– ६ लेश्या भव्य-अभव्य दोनों ही ।

सन्नी– ४ लेश्या सन्नी-असन्नी दोनों, पद्म शुक्ल लेश्या सन्नी ।

समकित– ६ लेश्या में समकित पावे ७ ही ।

आहारक– ६ लेश्या आहारक, अनाहारक दोनों ।

गुणस्थान– ३ लेश्या में गुणस्थान पावे ६ (प्रथम के), तेजो पद्म लेश्या में गुणस्थान पावे ७, शुक्ललेश्या में गुणस्थान पावे १३ ।

जीव– ३ लेश्या में जीव का भेद पावे १४ ही, तेजोलेश्या में जीव

का भेद ३ (३, १३, १४), पद्म शुक्ल लेश्या में जीव का भेद पावे २ (१३, १४ वां) ।

पर्याप्ति– ६ लेश्या में पर्याप्ति पावे ६ ही ।

प्राण– ६ लेश्या में प्राण पावे १० ही ।

संज्ञा– ६ लेश्या में संज्ञा पावे ४ ही ।

उपयोग– ५ लेश्या में उपयोग पावे १० (केवलद्विक टला), शुक्ललेश्या में उपयोग पावे १२ ही ।

दृष्टि– ६ लेश्या में दृष्टि पावे ३ ही ।

कर्म– ६ लेश्या में कर्म पावे ८ ही ।

शरीर– ६ लेश्या में शरीर पावे ५ ही ।

हेतु– ६ लेश्या में हेतु पावे ५७ ही ।

भव्यद्वार

गति– भव्य-अभव्य में गति पावे ४ ही ।

इन्द्रिय– भव्य-अभव्य में इन्द्रिय पावे ५ ही ।

काया– भव्य-अभव्य में काया पावे ६ ही ।

योग– भव्य में योग पावे १५, अभव्य में योग पावे १३ (आहारक, आहारकमिश्र टला) ।

वेद– भव्य-अभव्य में वेद पावे ३ ।

कषाय– भव्य-अभव्य में कषाय पावे २५ ।

ज्ञान– भव्य में ज्ञान पावे ८ (५ ज्ञान, ३ अज्ञान), अभव्य में तीन अज्ञान ।

संयम– अभव्य में संयम पावे १ असंयम, भव्य में संयम पावे ७ ही ।

दर्शन— अभव्य में दर्शन पावे ३ (केवलदर्शन टला), भव्य में दर्शन पावे ४ ही ।

लेश्या— भव्य-अभव्य में लेश्या पावे ६ ही ।

भव्य— भव्य सो भव्य, अभव्य सो अभव्य ।

सन्नी— भव्य-अभव्य में सन्नी-असन्नी दोनों ही ।

समकित— अभव्य में समकित पावे १ मिथ्यात्व, भव्य में समकित पावे ७ ही ।

आहारक— भव्य-अभव्य में आहारक-अनाहारक दोनों ही ।

गुणस्थान— भव्य में गुणस्थान पावे १४ ही, अभव्य में गुणस्थान पावे १ (प्रथम) ।

जीव— भव्य-अभव्य में जीव का भेद पावे १४ ही ।

पर्याप्ति— भव्य-अभव्य में पर्याप्ति पावे ६ ही ।

प्राण— भव्य-अभव्य में प्राण पावे १० ही ।

संज्ञा— भव्य-अभव्य में संज्ञा पावे ४ ही ।

उपयोग— भव्य में उपयोग पावे १२, अभव्य में उपयोग पावे ६ (३ अज्ञान, ३ दर्शन) ।

दृष्टि— अभव्य में दृष्टि पावे १ (मिथ्यादृष्टि), भव्य में दृष्टि पावे ३ ही ।

कर्म— भव्य-अभव्य में कर्म पावे आठों ही ।

शरीर— अभव्य में शरीर पावे ४ (आहारकशरीर टला), भव्य में शरीर पावे ५ ही ।

हेतु— अभव्य में हेतु पावे ५५ (आहारक, आहारकमिश्र टला), भव्य में हेतु पावे ५७ ही ।

सन्नी–असन्नीद्वार।

गति– सन्नी, असन्नी में गति पावे ४ ही ।

इन्द्रिय– असन्नी में इन्द्रिय पावे ५ ही, सन्नी में इन्द्रिय पावे १ (पंचेन्द्रिय) ।

काया– असन्नी में काया पावे ६ ही, सन्नी में काया पावे १ (त्रसकाय) ।

योग– असन्नी में योग पावे ६ (औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रिय, वैक्रियमिश्र, कार्मणकाययोग, व्यवहारभाषा), सन्नी में योग पावे १५ ही ।

वेद– असन्नी में वेद पावे १ (नपुंसकवेद), सन्नी में वेद पावे ३ ही ।

कषाय– असन्नी में कषाय पावे २३ (दो वेद टला), सन्नी में कषाय पावे २५ ही ।

ज्ञान– असन्नी में ज्ञान पावे ४ (२ ज्ञान, २ अज्ञान), सन्नी में ज्ञान पावे ७ (केवलज्ञान टला) ।

संयम– असन्नी में संयम पावे १ (असंयम), सन्नी में संयम पावे ७ ही ।

दर्शन– असन्नी में दर्शन पावे २ (चक्षु-अचक्षुदर्शन), सन्नी में दर्शन पावे ३ (केवलदर्शन टला) ।

लेश्या– असन्नी में लेश्या पावे ४ (प्रथम), सन्नी में लेश्या पावे ६ ही ।

भव्य– सन्नी-असन्नी में भव्य अभव्य दोनों ही ।

सन्नी– सन्नी सो सन्नी, असन्नी सो असन्नी ।

समकित– असन्नी में समकित पावे २ (मिथ्यात्व, सास्वादन), सन्नी में समकित पावे ७ ही ।
आहारक– सन्नी-असन्नी आहारक, अनाहारक दोनों ।
गुणस्थान– असन्नी में गुणस्थान पावे २ (१-२), सन्नी में गुणस्थान पावे १२ (प्रथम के) ।
जीव– असन्नी में जीव का भेद पावे १२ (१३, १४ वां टला), सन्नी में जीव का भेद पावे २ (१३, १४ वां) ।
पर्याप्ति– असन्नी में पर्याप्ति पावे ५ (प्रथम की), सन्नी में पर्याप्ति पावे ६ ही ।
प्राण– असन्नी में प्राण पावे ९ (मनबलप्राण टला), सन्नी में प्राण पावे १० ही ।
संज्ञा– सन्नी असन्नी में संज्ञा पावे ४ ही ।
उपयोग– असन्नी में उपयोग पावे ६ (२ ज्ञान, २ अज्ञान, २ दर्शन), सन्नी में उपयोग पावे १० (केवलद्विक टला) ।
दृष्टि– असन्नी में दृष्टि पावे २ (मिथ्यादृष्टि, सम्यग्दृष्टि), सन्नी में दृष्टि पावे ३ ही ।
कर्म– सन्नी-असन्नी में कर्म पावे आठों ही ।
शरीर– असन्नी में शरीर पावे ४ (आहारकशरीर टला), सन्नी में शरीर पावे ५ ही ।
हेतु– असन्नी में हेतु पावे ४२ (९ योग, ४ मिथ्यात्व, २ वेद टला), सन्नी में हेतु पावे ५७ ही ।

समकितद्वार

गति– ७ समकित में गति पावे चारों ही ।

इन्द्रिय– मिथ्यात्व में इन्द्रिय पावे ५ ही, सास्वादन में इन्द्रिय पावे ४ (एकेन्द्रिय टली), ५ समकित में इन्द्रिय पावे १ (पंचेन्द्रिय) ।
काया– मिथ्यात्व में काया पावे ६ ही, शेष ६ समकित में काया पावे १ त्रसकाय ।
योग– मिथ्यात्व, सास्वादन में योग पावे १३ (आहारक आहारकमिश्र टला), मिश्र में योग पावे १० (४ मन, ४ वचन, औदारिक और वैक्रिय), शेष ४ समकित में योग पावे १५ ही ।
वेद– ७ समकित में वेद पावे तीनों ही ।
कषाय– मिथ्यात्व, सास्वादन में कषाय पावे २५, शेष ५ समकित में कषाय पावे २१ (अनंतानुबंधिचौक टला) ।
ज्ञान– मिथ्यात्व मिश्र में ज्ञान पावे ३ अज्ञान, सास्वादन में ज्ञान पावे ३ ज्ञान, उपशम, क्षयोपशम, वेदक में ज्ञान पावे ४ (केवलज्ञान टला), क्षायिक समकित में ज्ञान पावे ५ ज्ञान ।
संयम– मिथ्यात्व, सास्वादन, मिश्र में संयम पावे १ असंयम, औपशमिक समकित में संयम ६ (परिहारविशुद्धिचारित्र टला) । क्षायोपशमिक, वेदक में संयम पावे ५ (सूक्ष्मसम्पराय, यथाख्यात चारित्र टला), क्षायिक समकित में संयम पावे ७ ।
दर्शन– ६ समकित में दर्शन पावे ३ (केवलदर्शन टला), क्षायिकसमकित में दर्शन पावे ४ ही ।
लेश्या– ७ समकित में लेश्या पावे ६ ही ।
भव्य– मिथ्यात्व में भव्य अभव्य दोनों, शेष समकित वाले भव्य ।
सन्नी– मिथ्यात्व, सास्वादन समकित सन्नी असन्नी दोनों । शेष समकित वाले सन्नी ।

समकित– समकित पावे अपनी अपनी ।

आहारक– मिश्रसमकित आहारक, शेष समकित आहारक अनाहारक दोनों ।

गुणस्थान– मिथ्यात्व सास्वादन मिश्र में गुणस्थान पावे अपना-अपना, उपशम समकित में गुणस्थान पावे ८ (४ से ११ गुणस्थान तक), क्षायोपशमिक समकित और वेदक में गुणस्थान पावे ४ (४ से ७ तक), क्षायिक समकित में गुणस्थान पावे ११ (४ से १४ तक) ।

जीव– मिथ्यात्व में जीव का भेद पावे १४, सास्वादन में ६ (५, ७, ९, ११, १३, १४), मिश्र में जीव का भेद पावे १ (सन्नी पंचेन्द्रिय का पर्याप्त), शेष ४ समकित में जीव का भेद पावे २ (१३, १४ वां) ।

पर्याप्ति– ७ समकित में पर्याप्ति पावे ६ ही ।

प्राण– ७ समकित में प्राण पावे १० ही ।

संज्ञा– ७ समकित में संज्ञा पावे ४ ही ।

उपयोग– मिथ्यात्व, मिश्र, सास्वादन में उपयोग पावे ६ (३ अज्ञान, ३ दर्शन), क्षयोपशम, वेदक में उपयोग पावे ७ (४ ज्ञान, ३ दर्शन), क्षायिक में उपयोग पावे ९ (५ ज्ञान, ४ दर्शन) ।

दृष्टि– मिथ्यात्व, मिश्र में दृष्टि पावे अपनी-अपनी, शेष ५ समकित में दृष्टि पावे १ सम्यक् दृष्टि ।

कर्म– ७ समकित में कर्म पावे आठों ही ।

शरीर– मिथ्यात्व, मिश्र, सास्वादन में शरीर पावे ४ (आहारकशरीर टला), शेष समकित में शरीर पावे ५ ही ।

हेतु– मिथ्यात्व में हेतु पावे ५५ (आहारक, आहारकमिश्र टला),

सास्वादन में हेतु पावे ५० (पूर्वोक्त में से ५ मिथ्यात्व टला), मिश्र में ४३ (५ योग, ५ मिथ्यात्व, अनंतानुबंधि का चौक टला), शेष समकित में हेतु पावे ४८ (५ मिथ्यात्व, अनन्तानुबंधिचतुष्क टला) ।

आहारक- अनाहारकद्वार

गति— आहारक, अनाहारक में गति पावे चारों ही ।

इंद्रिय— आहारक, अनाहारक में इंद्रिय पावे ५ ही ।

काया— आहारक, अनाहारक में काया पावे ६ ही ।

योग— आहारक में योग पावे १४ (कार्मणयोग टला), अनाहारक में योग पावे १ (कार्मणयोग) ।

वेद— आहारक, अनाहारक में वेद पावे तीन ही ।

कषाय— आहारक, अनाहारक में कषाय पावे २५ ही ।

ज्ञान— आहारक में ज्ञान पावे ८ ही, अनाहारक में ज्ञान पावे ७ (मनपर्यायज्ञान टला) ।

संयम— आहारक में संयम पावे ७ ही, अनाहारक में संयम २ (असंयम, यथाख्यातचरित्र) ।

दर्शन— आहारक में दर्शन पावे ४ ही, अनाहारक में दर्शन पावे ३ ही (चक्षुदर्शन टला) ।

लेश्या— आहारक, अनाहारक में लेश्या पावे ६ ही ।

भव्य— आहारक, अनाहारक भव्य अभव्य दोनों ही ।

सन्नी— आहारक, अनाहारक सन्नी, असन्नी दोनों ही ।

समकित— आहारक में समकित पावे ७ ही, अनाहारक में समकित पावे ६ (मिश्र टली) ।

आहारक– आहारक सो आहारक, अनाहारक सो अनाहारक ।

गुणस्थान– आहारक में गुणस्थान पावे १३ (१४ वां टला), अनाहारक में ५ (१, २, ४, १३, १४ वां टला) ।

जीव– आहारक में जीव का भेद पावे १४ ही, अनाहारक में जीव का भेद पावे ८ (सात का अपर्याप्ता, सन्नी पंचेन्द्रिय का पर्याप्ता) ।

पर्याप्ति– आहारक, अनाहारक में पर्याप्ति पावे ६ ही ।

प्राण– आहारक में प्राण पावे १० ही, अनाहारक में प्राण पावे २ (आयुषबलप्राण, कायाबलप्राण) ।

संज्ञा– आहारक, अनाहारक में संज्ञा पावे ४ ही ।

उपयोग– आहारक में उपयोग पावे १२ ही, अनाहारक में उपयोग पावे १० ही (मन:पर्यायज्ञान, चक्षुदर्शन टला) ।

कर्म– आहारक, अनाहारक में कर्म पावे आठों ही ।

शरीर– आहारक में शरीर पावे ५ ही, अनाहारक में शरीर पावे ३ (आहारक, वैक्रिय शरीर टला) ।

हेतु– आहारक में हेतु पावे ५६ (कार्मण टला), अनाहारक में हेतु पावे ४३ (१४ योग टला) ।

गुणस्थानद्वार

गति– पहले से चौथे गुणस्थान में गति पावे ४ ही, ५ वें गुणस्थान में गति पावे २ (मनुष्य, तिर्यंच), छठे से १४ गुणस्थान में गति पावे १ मनुष्य की।

इन्द्रिय– पहले गुणस्थान में इन्द्रिय पावे ५ ही, दूसरे गुणस्थान में इन्द्रिय पावे ४ (एकेन्द्रिय टली), तीसरे से बारहवें गुणस्थान में इन्द्रिय पावे १ पंचेन्द्रिय, १३, १४ गुणस्थान में इंद्रिय पावे नहीं

(अनिन्द्रिय) ।

काया– पहले गुणस्थान में काया पावे ६, शेष गुणस्थान में काया पावे १ (त्रस) ।

योग– १, २, ४ गुणस्थान में योग पावे १३ (आहारक, आहारकमिश्र टला), ३ रे गुणस्थान के योग पावे १० (४ मन, ४ वचन, औदारिक, वैक्रिय), ५ वें गुणस्थान में योग पावे १२ (आहारक, आहारकमिश्र, कार्मण टला), छठे गुणस्थान में योग पावे १४ (कार्मणयोग टला), ७ वें गुणस्थान में योग पावे ११ (तीनों मिश्र टले), ८ से १२ गुणस्थान तक योग पावे ९ (४ मन, ४ वचन, एक औदारिक), १३ गुणस्थान में योग पावे ५ या ७, १४ वां गुणस्थान अयोगी ।

वेद– १ से ९ गुणस्थान में वेद पावे ३ ही, १० से १४ वें गुणस्थान वाले अवेदी ।

कषाय– १-२ गुणस्थान में कषाय पावे २५ ही, ३-४ गुणस्थान में कषाय पावे २१ (अनंतानुबन्धिचतुष्क टला), ५ वें गुणस्थान में कषाय पावे १७ (अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क टला), ७, ८ वें गुणस्थान में कषाय पावे १३ (प्रत्याख्यानावरणचतुष्क टला), ९ वें गुणस्थान में कषाय पावे ७ (६ हास्यादिक षट्क टला), १० वें गुणस्थान में कषाय पावे १ (संज्वलन लोभ), ११ से १४ वें गुणस्थान अकषायी ।

ज्ञान– १, ३, गुणस्थान में ज्ञान पावे ३ अज्ञान, २, ४, ५ वें गुणस्थान में ज्ञान पावे ३ ज्ञान, ६ से १२ वें गुणस्थान में ४ ज्ञान पावे, १३ १४ वें गुणस्थान में ज्ञान पावे १ केवलज्ञान ।

संयम– १ से ४ गुणस्थान में संयम पावे १ असंयम, ५ वें गुणस्थान में संयम पावे १ संयमासंयम, ६, ७ वें गुणस्थान में संयम पावे ३ चारित्र (सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धिचारित्र) ८, ९ वें गुणस्थान में संयम पावे २ (सामायिक, छेदोपस्थापनीय), १० वें गुणस्थान में संयम पावे १ सूक्ष्मसम्पराय, ११ से १४ गुणस्थान में संयम पावे १ (यथाख्यातचारित्र) ।

दर्शन– १ से १२ गुणस्थान में दर्शन पावे ३ (केवलदर्शन टला), १३, १४ वां गुणस्थान में दर्शन पावे १ (केवलदर्शन) ।

लेश्या– १ से छठे गुणस्थान में लेश्या पावे ६ ही, ७ वें गुणस्थान में लेश्या पावे ३ (तेजो, पद्म, शुक्ल लेश्या), ८ से १३ वें गुणस्थान में लेश्या पावे १ शुक्ल, १४ वां गुणस्थान अलेशी ।

भव्य– प्रथम गुणस्थान में भव्य, अभव्य दोनों, २ से १४ तक सभी गुणस्थान वाले भव्य ।

सन्नी– प्रथम, दूसरे गुणस्थान में सन्नी असन्नी दोनों, शेष ३ से १२ वें गुणस्थान वाले सन्नी, १३ १४ वां गुणस्थान नोसन्नी-नोअसन्नी ।

समकित– १ ले गुणस्थान में समकित पावे एक (मिथ्यात्व), दूसरे में सास्वादन, तीसरे में मिश्र, ४ से ७ वें गुणस्थान में समकित पावे ४ (उपशम, क्षायोपशम, क्षायिक, वेदक समकित), ८ से ११ वें गुणस्थान में समकित पावे २ (उपशम, क्षायिक), १२, १३, १४ वें गुणस्थान में क्षायिक समकित ।

आहारक– १, २, ४, १३ वां गुणस्थान आहारक अनाहारक दोनों, १४ वां गुणस्थान अनाहारक, शेष गुणस्थान आहारक ।

गुणस्थान– अपना-अपना ।

जीव– पहले गुणस्थान में जीव का भेद पावे १४ ही, २ रे गुणस्थान में जीव का भेद पावे ६ (५, ७, ९, ११, १३, १४), ४ थे गुणस्थान में जीव का भेव पावे २ (१३ १४ वां), ३ रे और ५ से १४ गुणस्थान में जीव का भेद पावे १४ वां ।

पर्याप्ति– १४ ही गुणस्थान में पर्याप्ति पावे ६ ही ।

प्राण– १ से १२ गुणस्थान में प्राण पावे १० ही, १३ वें गुणस्थान में प्राण पावे ५ (५ इन्द्रियबलप्राण टला), १४ वें गुणस्थान में प्राण पावे २ (आयुष्य, कायाबलप्राण) ।

संज्ञा– १ से छठे गुणस्थान तक संज्ञा पावे ४ ही, शेष गुणस्थान में नोसंज्ञा बहुता ।

उपयोग– १, ३ गुणस्थान में उपयोग पावे ६ (३ अज्ञान, ३ दर्शन), २, ४, ५ वें गुणस्थान में उपयोग पावे ६ (३ ज्ञान, ३ दर्शन), ६ से १२ वें गुणस्थान में उपयोग पावे ७ (४ ज्ञान, ३ दर्शन); १३, १४ वें गुणस्थान में उपयोग पावे २ केवलज्ञान और केवलदर्शन ।

दृष्टि– पहले गुणस्थान में १ मिथ्यादृष्टि, तीसरे गुणस्थान में मिश्रदृष्टि, शेष गुणस्थान में सम्यग्दृष्टि ।

कर्म– १ से १० गुणस्थान में कर्म आठ ही, ११, १२ गुणस्थान में कर्म पावे ७ (मोहनीय टला), १३ १४ वें गुणस्थान में कर्म पावे ४ (घातीकर्म टले) ।

शरीर– पहले से पांचवें गुणस्थान में शरीर पावे ४ (आहारकशरीर टला), ६-७ वें गुणस्थान में शरीर पावे ५ ही, ८ से १४ वें गुणस्थान में शरीर पावे ३ (औदारिक, तैजस, कार्मण) ।

हेतु– पहले गुणस्थान में हेतु पावे ५५ (आहारक आहारकमिश्र टला), दूसरे गुणस्थान में हेतु पावे ५० (५५ में से ५ मिथ्यात्व टला), तीसरे गुणस्थान में हेतु पावे ४३ (५० में से अनंतानुबंधिचतुष्क, ३ योग टले), चौथे गुणस्थान में हेतु पावे ४६ (४३ में ३ योग बढ़े), पांचवें गुणस्थान में हेतु पावे ४० (४६ में से अप्रत्याख्यानचतुष्क, कार्मणयोग, त्रस की अव्रत टले) । छठे गुणस्थान में २७ (१४ योग १३ कषाय), ७ वें में हेतु २४ (२७ में से ३ मिश्रयोग टले), ८ वें गुणस्थान में हेतु पावे २२ (आहारक, वैक्रिययोग टला), ९ वें गुणस्थान में हेतु पावे १६ (हास्यादिकषट्क टला), १० वें गुणस्थान में हेतु पावे १० (संज्वलन की त्रिक, ३ वेद टले), ११, १२, गुणस्थान में हेतु पावे नौ (योग), १३ वें गुणस्थान में हेतु पावे ५ अथवा ७ (५ या ७ योग), १४ वें गुणस्थान में हेतु पावे नहीं ।

जीव का भेदद्वार

गति– ११ जीव के भेद में गति पावे १ (तिर्यंच की), ११, १३, १४ वें जीव के भेद में गति पावे ४।

इन्द्रिय– १, २, ३, ४, जीव के भेद में इन्द्रिय पावे १ (एकेन्द्रिय), ५-६ जीव के भेद में इन्द्रिय पावे १ (द्वीन्द्रिय), ७-८ जीव के भेद में इन्द्रिय पावे १ (त्रीन्द्रिय), ९-१० जीव के भेद में इन्द्रिय पावे १ (चतुरिन्द्रिय), ११ से १४ तक जीव के भेद में इन्द्रिय पावे १ (पंचेन्द्रिय) ।

काया– १ से ४ जीव के भेद में काया पावे ५ (स्थावर), ५ से १४ वें जीव के भेद में काया पावे एक त्रस ।

योग– पहले, तीसरे जीव के भेद में योग पावे ३ (औदारिक, औदारिकमिश्र, कार्मण योग) दूसरे जीव के भेद में योग पावे १ (औदारिक), चौथे जीव के भेद में योग पावे ४ (औदारिक, औदारिकमिश्रयोग, वैक्रिय, वैक्रियमिश्र), ५, ७, ९ जीव के भेद में योग पावे ३ (औदारिक, औदारिकमिश्र, कार्मणकाययोग), ६, ८, १०, १२, जीव के भेद में योग पावे २ (औदारिक, व्यवहारभाषा) ११, १३ वें जीव के भेद में योग पावे ५ (औदारिक, औदारिकमिश्र, वैक्रिय, वैक्रियमिश्र, कार्मण योग) १४ वें जीव के भेद में योग पावे १५ ही ।

वेद– १ से १२ जीव के भेद में वेद पावे १ नपुंसकवेद, १३, १४ वें जीव के भेद में वेद पावे ३ ही ।

कषाय– १ से १२ वें जीव के भेद में कषाय पावे २३ (स्त्रीवेद पुरुषवेद टला), १३, १४ वें जीव के भेद में कषाय पावे २५ ही ।

ज्ञान– १ से ४, ६, ८, १०, १२ में २ अज्ञान, ५, ७, ९, ११ में ज्ञान पावे ४ (२ ज्ञान, २ अज्ञान), १३ में ज्ञान पावे ६ (३ ज्ञान, ३ अज्ञान), १४ में ज्ञान पावे ८ ही ।

संयम– १ से १३ जीव के भेद में संयम पावे १ असंयम, १४ वें जीव के भेद में संयम पावे सातों ही ।

दर्शन– १ से ८ जीव के भेद में दर्शन पावे १ अचक्षुदर्शन, ९ से १२ तक में दर्शन पावे २ चक्षुदर्शन अचक्षुदर्शन । १३ वें जीव के भेद में दर्शन ३ (केवलदर्शन टला), १४ वें में दर्शन पावे ४ ही ।

लेश्या– ११ जीव के भेद में लेश्या पावे ३ (प्रथम की), तीसरे जीव

के भेद में लेश्या पावे ४ (प्रथम की) १३, १४ जीव के भेद में लेश्या पावे ६ ही ।

भव्य– १४ ही जीव के भेद में भव्य-अभव्य दोनों ही ।

सन्नी– १ से १२ तक जीव के भेद असन्नी, १३, १४ वां जीव भेद सन्नी ।

समकित– १ से ४, ६, ८, १०, १२ वें जीव के भेद में समकित पावे (मिथ्यात्व), ५, ७, ९, ११ वें जीव के भेद में समकित पावे २ (मिथ्यात्व, सास्वादन), १३ वें में समकित पावे ६ (मिश्र टली), १४ वें समकित पावे ७ ही ।

आहारक– आठ जीव के भेद आहारक, अनाहारक (७ का पर्याप्ता, एक सन्नी का पर्याप्ता १४ वां), शेष ६ जीव के भेद आहारक ।

गुणस्थान– १ से ४, ६, ८, १०, १२ जीव के भेद में गुणस्थान पावे १ (मिथ्यात्व गुणस्थान), ५, ७, ९, ११, वें जीव के भेद में गुणस्थान पावे २ (१, २, गुणस्थान), १३ वें जीव के भेद में गुणस्थान पावे ३ (१, २, ४ गुणस्थान), १४ वां जीव के भेद में गुणस्थान पावे १४ ही ।

जीव– जीव पावे अपनी-अपनी ।

पर्याप्ति– १, ३, जीव के भेद में पर्याप्ति पावे ३ (पहली), २, ४, जीव के भेद में पर्याप्ति पावे ४ पहली, ५, ७, ९, ११ वें जीव कें भेद में पर्याप्ति पावे ४ (पहली), ६, ८, १०, १२, १३ वें जीव के भेद में पर्याप्ति पावे ५ (पहली), १४ वें जीव के भेद में पर्याप्ति पावे ६ ही ।

प्राण– १, ३, जीव के भेद में प्राण पावें ३ (स्पर्शइन्द्रियबलप्राण, कायाबलप्राण, आयुषबलप्राण), २, ४ में प्राण पावे ४ (श्वासोच्छ्वासबलप्राण बढ़ा), ५ वें जीव के भेद में प्राण पावे ५ (रसनेन्द्रियबलप्राण बढ़ा), ६, ७ जीव के भेद में प्राण पावे ६ (घ्राणेन्द्रियबलप्राण बढ़ा), ८, ९, जीव के भेद में प्राण पावे ७ (चक्षुरिन्द्रियबलप्राण बढ़ा), १०, ११, १३ वें जीव के भेद में प्राण पावे ८ (मन वचन बलप्राण टला), १२ वें जीव के भेद में प्राण पावे ९ (मनबलप्राण टला) १४ वें में प्राण पावे १० ही ।

संज्ञा– १४ जीव के भेद में संज्ञा पावे ४ ही ।

उपयोग– १ से ४ थे, ६ वें ७ वें जीव के भेद में उपयोग पावे ३ (२ अज्ञान, १ दर्शन), ५, ७ जीव के भेद में उपयोग पावे ५ (२ ज्ञान, २ अज्ञान, १ दर्शन), ९, ११ वें जीव के भेद में उपयोग पावे ६ (२ ज्ञान, २ अज्ञान, २ दर्शन), १०, १२ वें में उपयोग पावे ४ (२ अज्ञान, २ दर्शन), १३ वें में उपयोग पावे ९ (३ ज्ञान, ३ अज्ञान, ३ दर्शन), १४ वें में उपयोग पावे १२ ही ।

दृष्टि– १ से ४, ६, ८, १०, १२ वें जीव के भेद में दृष्टि पावे १ (मिथ्यादृष्टि), ५, ७, ९, ११, १३ वें जीव के भेद में दृष्टि पावे २ (सम्यक्, मिथ्यादृष्टि), १४ वें जीव के भेद में दृष्टि ३ ही ।

कर्म– १४ जीव के भेद में कर्म पावे ८ ही ।

शरीर– १० जीव के भेद में शरीर पावे ३ (औदारिक, तैजस, कार्मण), ४, ११, १३ वें जीव के भेद में शरीर पावे ४ (वैक्रिय बढ़ा), १४ वें जीव के भेद में शरीर पावे ५ ही ।

हेतु– १, ३, ५, ७, ९ जीव का भेद में हेतु पावे ३९ (३ योग,

तेईस कषाय, १२ अव्रत, एक मिथ्यात्व), २ जीव के भेद में हेतु पावे ३७ (दो योग टला), ४ जीव के भेद में हेतु पावे ४०, (३९ में वैक्रियमिश्र बढ़ा), ६, ८, १०, १२ जीव के भेद में हेतु पावे ३८ (३७ तो उपरोक्त, एक व्यवहारभाषा), ११ जीव के भेद में हेतु पावे ४१ (३९ तो पूर्वोक्त वैक्रिय, वैक्रियमिश्र बढ़ा), १३ वें हेतु पावे ४७ (दस योग टला), १४ में हेतु पावे ५७ ही ।

पर्याप्तिद्वार

गति– ६ पर्याप्ति में गति पावे ४ ही ।

इन्द्रिय– ४ (प्रथम की) पर्याप्ति में इन्द्रिय पावे ५ ही, भाषापर्याप्ति में इन्द्रिय पावे ४ (एकेन्द्रिय टली), मन:पर्याप्ति में इन्द्रिय पावे १ (पंचेन्द्रिय) ।

काया– ४ पर्याप्ति में काया पावे ६ ही । भाषा एवं मन:पर्याप्ति में काया पावे १ (त्रस) ।

योग– ६ पर्याप्ति में योग पावे १५ ही ।

वेद– ६ पर्याप्ति में वेद पावे ३ ही ।

कषाय– ६ पर्याप्ति में कषाय पावे २५ ही ।

ज्ञान– ६ पर्याप्ति में ज्ञान पावे आठों ही ।

संयम– ६ पर्याप्ति में संयम पावे सातों ही ।

दर्शन– ६ पर्याप्ति में दर्शन पावे ४ ही ।

लेश्या– ६ पर्याप्ति में लेश्या पावे ६ ही ।

भव्य– ६ पर्याप्ति भव्य-अभव्य दोनों ही ।

सन्नी– पांच पर्याप्ति सन्नी, असन्नी दोनों, मन:पर्याप्ति सन्नी

समकित– ६ पर्याप्ति में समकित पावे ७ ही ।

आहारक– ६ पर्याप्ति आहारक अनाहारक दोनों ।

गुणस्थान– ६ पर्याप्ति में गुणस्थान पावे चौदह ।

जीव– ३ पर्याप्ति में जीव का भेद पावे १४ ही, श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति में जीव का भेद पावे १२ (१, ३, टला), भाषापर्याप्ति में जीव का भेद पावे ६ (६, ८, १०, १२, १३, १४ वां), मन:पर्याप्ति में जीव का भेद पावे १ (१४ ही) ।

पर्याप्ति– पर्याप्ति अपनी-अपनी ।

प्राण– ६ पर्याप्ति में प्राण पावे १० ही ।

संज्ञा– ६ पर्याप्ति में संज्ञा पावे ४ ही ।

उपयोग– ६ पर्याप्ति में उपयोग पावे १२ ही ।

दृष्टि– ६ पर्याप्ति में दृष्टि पावे ३ ही ।

कर्म– ६ पर्याप्ति में कर्म पावे ८ ही ।

शरीर– ६ पर्याप्ति में शरीर पावे ५ ही ।

हेतु– ६ पर्याप्ति में हेतु पावे ५७ ही ।

प्राणद्वार

गति– १० प्राण में गति पावे चार ही ।

इन्द्रिय– श्रोत्रेन्द्रिय एवं मनबलप्राण में इन्द्रिय पावे १ (पंचेन्द्रिय) चक्षुरिन्द्रियबलप्राण में इन्द्रिय पावे २ (चतुरिन्द्रिय बढ़ी), घ्राणेन्द्रियबलप्राण में इन्द्रिय पावे ३ (त्रीन्द्रिय बढ़ी), रसनेन्द्रियबलप्राण, वचनबलप्राण में इन्द्रिय पावे ४ (एकेन्द्रिय टली), स्पर्शनेन्द्रियबलप्राण, कायाबलप्राण, श्वासोच्छ्वासबलप्राण, आयुष्यबलप्राण में इन्द्रिय पावे पांचों ही ।

काया– ६ बलप्राण में काया पावे १ (त्रस), ४ बलप्राण में काया

पावे ६ ही।

योग— आठ बलप्राण में योग पावे १४ (कार्मण टला), दो बलप्राण (आयुष, काया) में योग पावे १५ ही ।

वेद— १० प्राण में वेद पावे ३ ही ।

कषाय— १० प्राण में कषाय पावे २५ ही ।

ज्ञान— ५ इन्द्रियबलप्राण में ज्ञान पावे ७ ही (केवलज्ञान टला), ५ बलप्राण में ज्ञान पावे आठों ही ।

संयम— १० बलप्राण में संयम पावे सात ही ।

दर्शन— ५ बलप्राण (५ इन्द्रियबलप्राण) में दर्शन पावे ३ (केवलदर्शन टला), शेष ५ बलप्राण में दर्शन पावे ४ ही ।

लेश्या— १० बलप्राण में लेश्या पावे ६ ही ।

भव्य— १० बलप्राण में भव्य, अभव्य दोनों ही ।

सन्नी— मन:बलप्राण सन्नी, शेष ९ प्राण सन्नी-असन्नी दोनों ही ।

समकित— १० बलप्राण में समकित पावे सातों ही ।

आहारक— आठ प्राण आहारक, आयुष एवं काया बलप्राण आहारक, अनाहारक दोनों ही ।

गुणस्थान— ५ प्राण (५ इन्द्रियबलप्राण) में गुणस्थान पावे १२ (प्रथम के), मन, वचन, श्वासोच्छ्वासबलप्राण में गुणस्थान पावे १३ (प्रथम के), २ बलप्राण (आयुषबलप्राण, कायाबलप्राण) में गुणस्थान पावे १४ ही ।

जीव— श्रोत्रेन्द्रियबलप्राण में जीव का भेद पावे ४ (११, १२, १३, १४ वां), चक्षुरिन्द्रियबलप्राण में जीव का भेद पावे ६ (९, १० वां

बढ़ा), घ्राणेन्द्रियबलप्राण में जीव का भेद पावे ८ (७ ८ बढ़ा), रसनेन्द्रियबलप्राण में जीव का भेद पावे १० (५, ६ बढ़ा), मनबलप्राण में जीव का भेद १ (१४ वां), वचनबलप्राण में जीव का भेद पावे ५ (६, ८, १०, १२, १४), शेष ४ बलप्राण में जीव का भेद पावे १४ ही ।

पर्याप्ति— १० प्राण में पर्याप्ति पावे ६ ही ।

प्राण— प्राण पावे अपना-अपना ।

संज्ञा— १० प्राण में संज्ञा पावे ४ ही ।

उपयोग— ५ इन्द्रियबलप्राण में उपयोग पावे १० (केवलद्विक टली), ५ प्राण में उपयोग पावे १२ ही ।

दृष्टि— १० प्राण में दृष्टि पावे ३ ही ।

कर्म— १० प्राण में कर्म पावे आठों ही ।

शरीर— १० प्राण में शरीर पावे ५ ही ।

हेतु— ८ बलप्राण में हेतु पावे ५६ (कार्मण टला), आयुषबलप्राण, कायाबलप्राण में हेतु पावे ५७ ही ।

संज्ञाद्वार

गति— चार संज्ञा में गति पावे ४ ही ।

इन्द्रिय— चार संज्ञा में इन्द्रिय पावे ५ ही ।

काया— चार संज्ञा में काया पावे ६ ही ।

योग— चार संज्ञा में योग पावे १५ ही।

वेद— ४ संज्ञा में वेद पावे ३ ही ।

कषाय— ४ संज्ञा में कषाय पावे २५ ही ।

ज्ञान— ४ संज्ञा में ज्ञान पावे ७ (केवलज्ञान टला)।

संयम– ४ संज्ञा में संयम पावे ५ (सूक्ष्मसम्पराय यथाख्यात चारित्र टला) ।
दर्शन– ४ संज्ञा में दर्शन पावे ३ (केवलदर्शन टला) ।
लेश्या– ४ संज्ञा में लेश्या पावे ६ ही ।
भव्य– ४ संज्ञा में भव्य, अभव्य दोनों ही ।
सन्नी– ४ संज्ञा में सन्नी, असन्नी दोनों ही ।
समकित– ४ संज्ञा में समकित पावे ७ ही ।
आहारक– ४ संज्ञा में आहारक, अनाहारक दोनों ही ।
गुणस्थान– ४ संज्ञा में गुणस्थान पावे ६ (प्रथम के) ।
जीव– ४ संज्ञा में जीव का भेद पावे १४ ही ।
पर्याप्ति– ४ संज्ञा में पर्याप्ति पावे ६ ही ।
प्राण– ४ संज्ञा में प्राण पावे १० ही ।
संज्ञा– संज्ञा अपनी अपनी।
उपयोग– ४ संज्ञा में उपयोग पावे १० (केवलद्विक टला) ।
दृष्टि– ४ संज्ञा में दृष्टि पावे ३ ही ।
कर्म– ४ संज्ञा में कर्म पावे आठों ही ।
शरीर– ४ संज्ञा में शरीर पावे ५ ही ।
हेतु– ४ संज्ञा में हेतु पावे ५७ ही ।

उपयोगद्वार

गति– साकार-उपयोग, अनाकार- उपयोग में गति पावे ४ ही ।
इन्द्रिय– दोनों उपयोग में इन्द्रिय पावे ५ ही ।
काया– दोनों उपयोग में काया पावे ६ ही ।
योग– दोनों उपयोग में योग पावे १५ ही ।

वेद— दोनों उपयोग में वेद पावे ३ ही ।

कषाय— दोनों उपयोग में कषाय पावे २५ ही ।

ज्ञान— दोनों उपयोग में ज्ञान पावे आठों ही ।

संयम— साकार-उपयोग में संयम पावे ७, अनाकार-उपयोग में संयम पावे ६ (सूक्ष्मसम्पराय टला) ।

दर्शन— दोनों उपयोग में दर्शन पावे ४ ही ।

लेश्या— दोनों उपयोग में लेश्या पावे ६ ही ।

भव्य— दोनों उपयोग में भव्य, अभव्य दोनों ही ।

सन्नी— दोनों उपयोग में सन्नी, असन्नी दोनों ही ।

समकित— दोनों उपयोग में समकित पावे ७ ही ।

आहारक— दोनों उपयोग में आहारक, अनाहारक दोनों ही ।

गुणस्थान— साकार-उपयोग में गुणस्थान पावे १४ ही, अनाकार-उपयोग में गुणस्थान पावे १३ (१० वां टला) ।

जीव— दोनों उपयोग में जीव का भेद पावे १४ ।

पर्याप्ति— दोनों उपयोग पर्याप्ति पावे ६ ही ।

प्राण— दोनों उपयोग में प्राण पावे १० ही ।

संज्ञा— दोनों उपयोग में संज्ञा पावे ४ ही ।

उपयोग— उपयोग अपना अपना ।

दृष्टि— दोनों उपयोग में दृष्टि पावे ३ ही ।

कर्म— दोनों उपयोग में कर्म पावे ८ ही ।

शरीर— दोनों उपयोग में शरीर पावे ५ ही ।

हेतु— दोनों उपयोग में हेतु पावे ५७ ही ।

दृष्टिद्वार

गति– ३ दृष्टि में गति पावे ४ ही ।

इन्द्रिय– मिथ्यादृष्टि में इन्द्रिय पावे ५ ही, सम्यग्दृष्टि में इन्द्रिय पावे ४ (एकेन्द्रिय टली), मिश्रदृष्टि में इन्द्रिय पावे १ (पंचेन्द्रिय) ।

काया– मिथ्यादृष्टि में काया पावे ६ ही । सम्यग्दृष्टि, मिश्रदृष्टि में काया पावे १ (त्रसकाय) ।

योग– मिथ्यादृष्टि में योग पावे १३ (आहारक, आहारकमिश्र टला), मिश्रदृष्टि में योग पावे १० (४ मन, ४ वचन, औदारिक, वैक्रिय), सम्यग्दृष्टि में योग पावे १५ ही ।

वेद– ३ दृष्टि में वेद पावे तीनों ही ।

कषाय– मिथ्यादृष्टि, सम्यग्दृष्टि में कषाय पावे २५ ही, मिश्रदृष्टि में २१ (अनंतानुबंधिचतुष्क टला) ।

ज्ञान– मिथ्यादृष्टि मिश्रदृष्टि में ज्ञान पावे ३ अज्ञान, सम्यग्दृष्टि में ज्ञान पावे ५ ज्ञान ।

संयम– मिथ्यादृष्टि, मिश्रदृष्टि में संयम पावे १ असंयम, सम्यग्दृष्टि में संयम पावे सातों ही ।

दर्शन– मिथ्यादृष्टि, मिश्रदृष्टि में दर्शन पावे ३ (केवलदर्शन टला), सम्यग्दृष्टि में दर्शन पावे चारों ही ।

लेश्या– ३ दृष्टि में लेश्या पावे ६ ही ।

भव्य– मिथ्यादृष्टि भव्य अभव्य दोनों, दो दृष्टि भव्य ।

सन्नी– सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टि सन्नी असन्नी दोनों, मिश्रदृष्टि सन्नी ।

समकित– मिथ्यादृष्टि में १ मिथ्यात्व, मिश्रदृष्टि में १ मिश्र, सम्यग्दृष्टि में पांच समकित ।

आहारक– मिश्रदृष्टि आहारक, शेष दोनों दृष्टि आहारक अनाहारक दोनों ही ।

गुणस्थान– मिथ्यादृष्टि में गुणस्थान पावे १, मिश्रदृष्टि में गुणस्थान १ (३ रा), सम्यग्दृष्टि में १२ गुणस्थान ।

जीव– मिथ्यादृष्टि में जीव का भेद पावे १४, ही । मिश्रदृष्टि में जीव का भेद १ (१४ वां), सम्यग्दृष्टि में जीव का भेद पावे ६ (५, ७, ९, ११, १३, १४ वां) ।

पर्याप्ति– तीनों दृष्टि में पर्याप्ति पावे ६ ही ।

प्राण– तीनों दृष्टि में प्राण पावे १० ही ।

संज्ञा– तीन दृष्टि में संज्ञा पावे चारों ही ।

उपयोग– मिथ्यादृष्टि, मिश्रदृष्टि में उपयोग पावे ६ (३ अज्ञान, ३ दर्शन), सम्यग्दृष्टि में उपयोग पावे ९ (पांच ज्ञान, ४ दर्शन) ।

दृष्टि– दृष्टि पावे अपनी-अपनी ।

कर्म– ३ दृष्टि में कर्म पावे आठों ही ।

शरीर– मिथ्यादृष्टि मिश्रदृष्टि में शरीर पावे ४ (आहारकशरीर टला), सम्यग्दृष्टि में शरीर पावे ५ ही ।

हेतु– मिथ्यादृष्टि में हेतु पावे ५५ (आहारक आहारकमिश्र टला), मिश्रदृष्टि में हेतु पावे ४३ (५ योग, ४ अनंतानुबंधीचतुष्क, ५ मिथ्यात्व टले), सम्यग्दृष्टि में हेतु पावे ५२ (५ मिथ्यात्व टले) ।

कर्मद्वार

गति– आठ कर्म में गति पावे ४ ही ।

इन्द्रिय– आठ कर्म में इन्द्रिय पावे पांच ही ।

काया– आठ कर्म में काया पावे ६ ही ।

योग– आठ कर्म में योग पावे १५ ही ।

वेद– आठ कर्म में वेद पावे ३ ही ।

कषाय– आठ कर्म में कषाय पावे २५ ही ।

ज्ञान– चार कर्म में ज्ञान पावे ७ ही (केवलज्ञान टला), चार कर्म में ज्ञान पावे ८ ही ।

संयम– मोहनीय कर्म में संयम पावे ६ (यथाख्यातचारित्र टला), ७ कर्म में संयम पावे ७ ही ।

दर्शन– चार कर्म में दर्शन पावे ३ ही (केवलदर्शन टला), ४ कर्म (अघाती) में दर्शन पावे ४ ही ।

लेश्या– आठ कर्म में लेश्या पावे ६ ही ।

भव्य– आठ कर्म में भव्य-अभव्य दोनों ही ।

सन्नी– आठ कर्म में सन्नी-असन्नी दोनों ही ।

समकित– आठ कर्म में समकित पावे ७ ही ।

आहारक– आठ कर्म में आहारक, अनाहारक दोनों ही ।

गुणस्थान– मोहनीयकर्म में गुणस्थान पावे १० (प्रथम के), ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय, अन्तराय में गुणस्थान पावे १२ (प्रथम के), चार अघाती कर्म में गुणस्थान पावे १४ ही ।

जीव– आठ कर्म में जीव का भेद पावे १४ ही ।

पर्याप्ति– आठ कर्म में पर्याप्ति पावे ६ ही ।

प्राण– आठ कर्म में प्राण पावे १० ही ।

संज्ञा– आठ कर्म में संज्ञा पावे ४ ही ।

उपयोग– चार कर्म में उपयोग पावे १० (केवलद्विक टला), चार कर्म (अघाती) में उपयोग पावे १२ ही ।
दृष्टि– आठ कर्म में दृष्टि पावे ३ ही ।
कर्म– कर्म पावे अपने अपने ।
शरीर– आठ कर्म में शरीर पावे ५ ही ।
हेतु– आठ कर्म में हेतु पावे ५७ ही ।

शरीरद्वार

गति– औदारिक शरीर में गति पावे २ (मनुष्य, तिर्यंच) वैक्रिय, तैजस कार्मण शरीर में गति पावे ४ ही । आहारक शरीर में गति पावे १ (मनुष्य की) ।
इन्द्रिय– औदारिक, तैजस कार्मण शरीर में इन्द्रिय पावे ५ ही, वैक्रिय शरीर में इन्द्रिय पावे २ (एकेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय), आहारकशरीर में इन्द्रिय पावे १ (पंचेन्द्रिय) ।
काया– औदारिक, तैजस, कार्मण शरीर में काया पावे ६ ही, वैक्रिय शरीर में काया पावे २ (वायुकाय, त्रसकाय,), आहारकशरीर में काया पावे १ (त्रसकाया) ।
योग– औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर में योग पावे १५ ही, वैक्रियशरीर में योग पावे १० (४ मन, ४ वचन, वैक्रिय, वैक्रियमिश्र), आहारकशरीर में योग पावे १० (४ मन, ४ वचन, आहारकद्विक) ।
वेद– ४ शरीर में वेद पावे ३ ही, आहारकशरीर में वेद पावे २ (पुरुष, नपुंसक वेद) ।
कषाय– ४ शरीर में कषाय पावे २५ ही, आहारकशरीर में कषाय

पावे १२ (प्रथम के तीन चौक, वेद टला) ।

ज्ञान– औदारिक, तैजस, कार्मण शरीर में ज्ञान पावे ८ (५ ज्ञान, ३ अज्ञान), वैक्रिय शरीर में ज्ञान पावे ७ (४ ज्ञान, ३ अज्ञान), आहारकशरीर में ज्ञान पावे ४ (४ ज्ञान) ।

संयम– औदारिक, तैजस, कार्मण शरीर में संयम पावे ७ ही, वैक्रियशरीर में संयम पावे ४ (प्रथम के), आहारकशरीर में संयम पावे २ (सामायिक, छेदोपस्थापनीय) ।

दर्शन– औदारिक, तैजस, कार्मण में दर्शन पावे ४ ही, वैक्रिय, आहारकशरीर में दर्शन पावे ३ (केवलदर्शन टला) ।

लेश्या– ५ शरीर में लेश्या पावे ६ ही ।

भव्य– ४ शरीर भव्य, अभव्य, आहारकशरीर भव्य ।

सन्नी– ४ शरीर सन्नी, असन्नी, आहारकशरीर सन्नी ।

समकित– ४ शरीर में समकित पावे ७ ही, आहारकशरीर में समकित पावे ४ (३ मिथ्यात्व, सास्वादन, मिश्र टली) ।

आहारक– औदारिक, तैजस, कार्मण शरीर आहारक, अनाहारक दोनों, वैक्रिय आहारकशरीर अनाहारक ।

गुणस्थान– औदारिक, तैजस, कार्मण शरीर में गुणस्थान पावे १४, वैक्रिय शरीर में गुणस्थान पावे ७, आहारकशरीर में गुणस्थान पावे २ (६-७) ।

जीव– औदारिक तैजस कार्मण शरीर में जीव का भेद १४ ही, वैक्रियशरीर में जीव का भेद ४ (४, ११, १३, १४) आहारक में जीव का भेद पावे १ (१४ वां) ।

पर्याप्ति– ५ शरीर में पर्याप्ति पावे ६ ही ।

प्राण– ५ शरीर में प्राण पावे १० ही ।

संज्ञा– ५ शरीर में संज्ञा पावे ४ ही ।

उपयोग– औदारिक तैजस कार्मण शरीर में उपयोग पावे १२ ही, वैक्रिय में उपयोग पावे १०, आहारक में उपयोग पावे ७ ।

दृष्टि– ४ शरीर में दृष्टि पावे ३ ही, आहारकशरीर में दृष्टि पावे १ (सम्यग्दृष्टि) ।

कर्म– ५ शरीर में कर्म पावे ८ ही ।

शरीर– औदारिक तैजस कार्मण शरीर में शरीर पावे ५ ही, वैक्रिय शरीर में ४ (आहारक टला), आहारक में ४ (वैक्रिय टला) ।

हेतु– औदारिक तैजस कार्मण शरीर में हेतु पावे ५० ही, वैक्रिय में हेतु पावे ५२ (५ योग टला), आहारकशरीर में हेतु पावे २२ (१० योग १२ कषाय) ।

हेतुद्वार

(१२ अव्रत) ५ इन्द्रिय, ६ काया, १ मन, ५ मिथ्यात्व, = १७ हेतु)

गति– १७ हेतु में गति पावे चारों ही ।

इन्द्रिय– ४ मिथ्यात्व (आभिनिवेशिक को छोड़कर) इन्दिय पावे १ (पंचेन्द्रिय), १३ हेतु में इन्द्रिय पावे ५ ही ।

काया– ४ मिथ्यात्व में काया पावे १ (त्रस), १३ हेतु में काया पावे ६ ही ।

योग– १७ हेतु में योग पावे १३ (आहारक, आहारकमिश्र टला) ।

वेद– १७ हेतु में वेद पावे ३ ही ।

कषाय– १७ हेतु में कषाय पावे २५ ही ।

ज्ञान– ५ मिथ्यात्व में ज्ञान पावे ३ (३ अज्ञान), १२ हेतु में ज्ञान पावे ६ (मनःपर्यायज्ञान, केवलज्ञान टला) ।

संयम– ५ मिथ्यात्व, त्रस की अव्रत में संयम पावे १ असंयम, ११ हेतु में संयम पावे २ (असंयम, संयमासंयम) ।

दर्शन– १७ हेतु में दर्शन पावे ३ (केवलदर्शन टला) ।

लेश्या– १७ हेतु में लेश्या पावे ६ ही ।

भव्य– १७ हेतु में भव्य, अभव्य दोनों ही ।

सन्नी– ४ मिथ्यात्व में सन्नी, शेष १३ हेतु सन्नी, असन्नी दोनों ।

समकित– ५ मिथ्यात्व में समकित पावे १ (मिथ्यात्व) । शेष १२ हेतु में समकित पावे सातों ही ।

आहारक– १७ हेतु में आहारक, अनाहारक दोनों ही ।

गुणस्थान– ५ मिथ्यात्व में गुणस्थान पावे १ (मिथ्यात्व), त्रस की अव्रत में गुणस्थान पावे ४ (प्रथम के), ११ हेतु में गुणस्थान पावे ५ (प्रथम के) ।

जीव– ४ मिथ्यात्व में जीव का भेद पावे २ (१३ वां, १४ वां), १३ हेतु में जीव का भेद पावे १४ ही ।

पर्याप्ति– १७ हेतु में पर्याप्ति पावे ६ ही ।

प्राण– १७ हेतु में प्राण पावे १० ही ।

संज्ञा– १७ हेतु में संज्ञा पावे ४ ही ।

उपयोग– ५ मिथ्यात्व में उपयोग पावे ६ (३ अज्ञान, ३ दर्शन), १२ हेतु में उपयोग पावे ९ (३ ज्ञान, ३ अज्ञान, ३ दर्शन) ।

दृष्टि– ५ मिथ्यात्व में दृष्टि पावे १ (मिथ्यात्वदृष्टि), १२ हेतु में दृष्टि पावे ३ ही ।

कर्म– १७ हेतु में कर्म पावे ८ ही ।

शरीर– १७ हेतु में शरीर पावे ५ ही ।

हेतु– १७ हेतु में हेतु पावे ५५ (आहारक, आहारकमिश्र टला) ।

आत्माद्वार

गति– चारित्रात्मा में गति पावे १ (मनुष्य), ७ आत्मा में गति पावे ४ ही ।

इन्द्रिय– चारित्र-आत्मा इन्द्रिय पावे १ (पंचेन्द्रिय), ज्ञान-आत्मा में इन्द्रिय पावे ४ (एकेन्द्रिय टली), शेष ६ आत्मा में इन्द्रिय पावे ५ ही ।

काया– ज्ञानात्मा, चारित्रात्मा में काया पावे १ (त्रस), ६ आत्मा में काया पावे ६ ही ।

योग– आठों ही आत्मा में योग पावे १५ ही ।

वेद– आठों ही आत्मा में वेद पावे ३ ही ।

कषाय– चारित्र-आत्मा में कषाय पावे १३ (४ संज्वलनचतुष्क कषाय, नव नौकषाय), शेष आत्मा में कषाय पावे २५ ही ।

ज्ञान– ज्ञान-आत्मा, चारित्र-आत्मा, में ज्ञान पावे ५, कषाय-आत्मा में ज्ञान पावे ७ (केवलज्ञान टला), शेष ५ आत्मा में ज्ञान पावे ८ ही ।

संयम– चारित्र-आत्मा में संयम पावे ५, कषाय-आत्मा में संयम पावे ६ (यथाख्यात टला), शेष ६ आत्मा में संयम पावे ७ ही ।

दर्शन– कषाय-आत्मा में दर्शन पावे ३ (केवलदर्शन टला), शेष ७ आत्मा में दर्शन पावे ४ ही ।

लेश्या– ८ आत्मा में लेश्या पावे ६ ।

भव्य– ज्ञान-आत्मा, चारित्र-आत्मा भव्य, शेष आत्मा भव्य-अभव्य दोनों ही ।

सन्नी– चारित्र- आत्मा में सन्नी, शेष ७ आत्मा सन्नी, असन्नी दोनों ।

समकित– ज्ञान-आत्मा में समकित पावे ५ (मिथ्यात्व, मिश्र टली), **चारित्र**– आत्मा में समकित पावे ४ ही, (मिथ्यात्व, सास्वादन, मिश्र टली), शेष ६ आत्मा में समकित पावे ७ ही ।

आहारक– आठों आत्मा आहारक-अनाहारक दोनों ही ।

गुणस्थान– द्रव्य-आत्मा, उपयोग-आत्मा, दर्शन-आत्मा, वीर्य-आत्मा में गुणस्थान पावे १४ ही । कषाय- आत्मा में गुणस्थान पावे १० ही (प्रथम के), योग-आत्मा में गुणस्थान पावे १३ (१४ वां टला), ज्ञान-आत्मा में गुणस्थान पावे १२ (१, ३ रा टला), चारित्र-आत्मा में गुणस्थान पावे ९ (१ से ५ गुणस्थान टला) ।

जीव– चारित्र-आत्मा में जीव का भेद पावे १ (१४ वां), ज्ञान-आत्मा में जीव का भेद पावे ६ (५, ७, ९, ११, १३, १४ टले), शेष आत्मा में जीव का भेद १४ ।

पर्याप्ति– ८ आत्मा में पर्याप्ति पावे ६ ही ।

प्राण– ८ आत्मा में प्राण पावे १० ही ।

संज्ञा– ८ आत्मा में संज्ञा पावे ४ ही ।

उपयोग– ज्ञान- आत्मा में उपयोग पावे ९, कषाय-आत्मा में उपयोग पावे १०, शेष ५ आत्मा में उपयोग पावे १२ ही ।

दृष्टि– ज्ञान-आत्मा, चारित्र-आत्मा में दृष्टि पावे १ (सम्यग्दृष्टि), शेष ६ आत्मा में दृष्टि पावे ३ ही।

कर्म– ८ आत्मा में कर्म पावे ८ ही ।

शरीर– ८ आत्मा में शरीर पावे ५ ही ।

हेतु– चारित्र-आत्मा में हेतु पावे २८ (१५ योग, १३ कषाय), ज्ञान-आत्मा में हेतु पावे ५२ (५ मिथ्यात्व टला), ६ आत्मा में हेतु पावे ५७ ही ।

बाटे(मार्ग) बहताद्वार

गति– बाटे बहता (अन्तराल में) जीव में गति पावे चारों ।

इन्द्रिय– बाटे बहता जीव में इन्द्रिय पावे ५ ही ।

काया– बाटे बहता जीव में काया पावे ६ ही ।

योग– बाटे बहता जीव में योग पावे १ (कार्मण) ।

वेद– बाटे बहता जीव में वेद पावे ३ ।

कषाय– बाटे बहता जीव में कषाय पावे २५ ।

ज्ञान– बाटे बहता जीव में ज्ञान पावे ६ (मन:पर्यायज्ञान, केवलज्ञान टला) ।

संयम– बाटे बहता जीव में संयम पावे १ (असंयम) ।

दर्शन– बाटे बहता जीव में दर्शन पावे २ (चक्षुदर्शन, केवलदर्शन टला) ।

लेश्या– बाटे बहता जीव में लेश्या पावे ६ ।

भव्य– बाटे बहता जीव में भव्य, अभव्य दोनों ही ।

सन्नी– बाटे बहता जीव में सन्नी, असन्नी दोनों ही ।

समकित– बाटे बहता जीव में समकित पावे ६ (मिश्रसमकित टली) ।

आहारक– बाटे बहता जीव में अनाहारक ।

गुणस्थान– बाटे बहता जीव में गुणस्थान पावे ३ (१, २, ४) ।
जीव– बाटे बहता जीव में जीव का भेद पावे ७ (७ का अपर्याप्ता) ।
पर्याप्ति– बाटे बहता जीव में पर्याप्ति पावे नहीं ।
प्राण– बाटे बहता जीव में प्राण पावे २ (आयुष, काया), कोई एक भी कहते हैं (आयुषबलप्राण) ।
संज्ञा– बाटे बहता जीव में संज्ञा पावे ४ ।
उपयोग– बाटे बहता जीव में उपयोग पावे ८ ही ।
दृष्टि– बाटे बहता जीव में दृष्टि पावे २ (मिश्रदृष्टि टली) ।
कर्म– बाटे बहता जीव में कर्म पावे ८ ही ।
शरीर– बाटे बहता जीव में शरीर पावे २ (तैजसशरीर, कार्मणशरीर) ।
हेतु– बाटे बहता जीव में हेतु पावे ४३ (१४ योग टला) ।